वह दिव्य-छवि

कस्तूरी बहिन

वह

दिव्य छवि

लेखिका - कस्तूरी बहिन

प्रथम संस्करण - जुलाई, 1997

मूल्य- 60/-

प्रकाशक :
श्री जी.डी. चतुर्वेदी
सी 430 ए 'परिजात'
एच. रोड, महानगर
लखनऊ - पिन : 226006

मुद्रक :
एनटेक्स प्रिंटर्स
10 ए, बटलर रोड,
डालीबाग, लखनऊ।
फोन: 283370, 273808

सर्वाधिकार सुरक्षित

विषय-सूची

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	आमुख	1
2.	समर्पण	2
3.	दो शब्द	3-4
4.	कैसी है वह दिव्य-छवि	5-13
5.	सहज-मार्ग साधना में अनन्य अनुभूतियाँ	14-29
6.	अहं के सोलह सर्किल्स्	30-47
7.	सात रिंग्स्	48-52
8.	दैविक - प्रशिक्षण	53-63
9.	उप - श्रृंगार	64-67
10.	हमारा त्योहार (गीत)	68
11.	प्रश्न-उत्तर	69

कस्तूरी बहिन

आमुख

कैसी अजीब बात है कि इस पुस्तक का आमुख लिखते समय मेरी यह लेखिनी कदाचित् भूल से ही लिख बैठी कि "सँवार दे हमको और मार दे अहं को।" अब आपका प्रश्न तो स्वभावत: उत्तर माँग ही बैठेगा कि "कौन हैं ये", जिसके समक्ष मेरा अन्तर्मन स्वयं ही समर्पित होकर पुकार उठा है कि 'मुझे संवार दे।' अब आप यह भी तो पूछ सकते हैं कि 'वह कौन सी कमी है जिससे तेरा उज्जवल रूप मैला हो गया है?" तो सुनिये, कमी तो मात्र 'अहं' है किन्तु इसका विस्तार हमारे अनजाने ही बहुत हो जाता है और फिर ठोस पड़ जाने पर यह 'ग्रन्थि' बन जाता है। सहज-मार्ग साधना में अन्तर में श्री बाबूजी महाराज की पावन प्राणाहुति-शक्ति का प्रवाह पाते हुये ध्यान में दिव्य-आनन्द की रसानुभूतियों में डूबकर साधक का अहं धुल जाये तो मेरी लेखिनी का लेखन भी धन्य हो जायेगा और आपके समक्ष यह भी प्रगट हो जायेगा कि "कौन हैं ये।"

धरा पर अवतरित, सहज-मार्ग के दाता श्री बाबूजी की दिव्य विराट-गति में लय होकर, हमारा अस्तित्व भी ईश्वरीय-परमानन्द की परम-गति में विलीन हो जाता है- यह यथार्थ मेरी पुस्तक 'अनन्त-यात्रा' के द्वारा स्वत: मुखरित भी हुआ है। साथ ही उनके दैविक प्यार का निमंत्रण भी समस्त के प्रति है- यह यथार्थ भी मेरी लेखिनी द्वारा प्रगट होता रहा है। मेरी लेखिनी के मालिक, स्वयं मेरे बाबूजी हैं। मालिक का दिया हुआ इसका बड़प्पन कहूँ या सौभाग्य कि इसका (लेखिनी का) हौंसला तो देखिये कि समस्त के मस्तकों को इनके चरणों में नत कर पाने के लोभ को आज यह संवरण नहीं कर पा रही है। तभी तो यह कह उठती है कि ओ मुख, अब ऊपर न देख, अब तो धरा को अपनी पावन-प्राणाहुति से पखारती हुई इस दिव्य विभूति (श्री बाबूजी) के चरणों में अपनी दृष्टि को न्यौछावर कर दे जिससे आपको भी मेरी तरह शाश्वत परमानन्द में डूबा हुआ समां ही अंतर बाहर व समक्ष में दृष्टिगत होगा। इतना ही नहीं दिव्य-सौंदर्य में समा जायेगा तेरा सम्पूर्ण अस्तित्व। ओ मुख, मुझ आमुख को देख तो तेरा जीवन धन्य हो जायेगा, फिर तू समझ जायेगा कि 'कौन हैं ये' जिनके बारे में इस पुस्तक का लेखन है और कैसी है इनकी वह दिव्य छवि!

कस्तूरी बहिन

समर्पण

न जाने क्यों आज मुझे अपनी इस नवीन एवं स्वत: समर्पित पुस्तक का समर्पण लिख पाना बहुत कठिन प्रतीत हो रहा है। जानते हैं क्यों? क्योंकि किस लेखिनी में साहस है कि उनके प्रत्यक्ष रहते हुए और अपने होश के अप्रत्यक्ष रहते हुए यह लिख सके कि 'कौन हैं ये' और कैसी है इनकी वह दिव्य-छवि! परन्तु ? यह क्या हुआ कि मेरी लेखिनी की मुस्कुराहट बता रही है कि इस दिव्य-छवि का स्पर्श इसने पा लिया है और लेखन के लिए यह सजग हो उठी है।

यह सत्य तो समस्त के प्रति उजागर ही हो गया है कि मेरी पुस्तकें तो मेरे बाबू जी महाराज की दैविक चरण-रज से ही पखारी हुई हैं। और यह भी कि युग-परिवर्तन के लिए भूमा की इस अनुपम दिव्य-विभूति को हमारे समर्थ सद्गुरू श्री लालाजी साहब समस्त की आत्मिक-उन्नति हित धरा पर उतार लाए हैं। अभ्यास काल से अब तक मैंने यह पाया है कि अभ्यासियों के ह्रदय में दैविक शक्ति का प्रवाह,देकर ईश्वरीय-गति की अनुभूतियों को अन्तर में उतार लाने की दैविक क्षमता भी मानों इन पर बलिहार होकर इस सोच में पड़ गई है कि 'ये' कौन हैं?'' उनका (श्री बाबूजी) कथन कि ''मैं जो कुछ भी आदि-शक्ति का प्रसाद प्राणिमात्र के लिए लाया हूं इसे लुटाकर ही जाऊँगा।'' इस कथन की दैविक-गरिमा ही आज इस पुस्तक को गौरवान्वित बनाने जा रही है। कदाचित् अपनी इस बिटिया के लिए उन्हें यह भेद भी खोलना पड़ा कि '' अपनी दिव्य एवं विराट छवि के दैविक सागर में लय-अवस्था प्रदान करते हुए उन्होंने मुझे 'अहं' के सोलह सर्किलों के बन्धन से मुक्त करके, लय-अवस्था को भी लय कर दिया है। अनन्य भक्ति से नहलाते हुये वे प्राणिमात्र के हित 'परम गति' का वरदान लाये हैं। उनका यह कथन मैं क्षण भर को भी नहीं भूल पाई हूँ कि ''मैं तो प्राणिमात्र के दैविक-हित के लिए उनके प्रति निवेदित हूँ। ईश्वर सबके अन्दर है परन्तु सब ईश्वर के अन्दर प्रवेश नहीं पाये हुये हैं, इसे पूर्ण कर पाने का ही मेरा दैविक-संकल्प है।'' जब उनका दैविक संकल्प प्राणिमात्र के उद्धार के हित है तो फिर आज मेरी यह पुस्तक 'कौन हैं ये', सहज मार्ग का संदेश लिए हुए समस्त के समक्ष में उपस्थित है। केवल उनकी ही कृपा एवं सहज-शक्ति द्वारा, सहज-गति की प्राप्ति का वरदान लिए हुए, अनन्य अनुभूतियों के दिव्य-श्रोत में नहाई हुई मेरी यह पुस्तक, समस्त के हित के लिए ही समर्पित है।

कस्तूरी बहिन

दो शब्द

शब्दों से परे, आध्यात्मिक-गतियों की श्रेष्ठ अनुभूतियों से ओत-प्रोत इस पुस्तक के लिए 'दो शब्द' लिख पाने में जाने क्यों आज यह लेखिनी ठहर सी गई है। क्योंकि समक्ष में विद्यमान हुई अनुपम विभूति की दिव्य-छवि ने मानों समस्त वातावरण को ही अभिभूत कर दिया है। एक दिन साक्षात्कार की परम गति में मुझे लय करके, घट-घट में बिराजने वाली यह दिव्य-छवि जब सर्वशक्तिमान के रूप में समक्ष में व्याप्त हो गई, तब भी मेरी लेखिनी स्तब्ध होकर ठहर गई थी। इस सोच में कि 'कौन है ये दिव्य शक्ति'। किन्तु अब तो स्वयं दैविक-शक्ति ही लेखन को धन्य बना देने के लिए तत्पर हो उठी है। तो सुनिये- आध्यात्मिक क्षेत्र में दो शब्दों की ही महत्ता है, शब्द हैं- 'मैं और तू'। साधना का प्रारम्भ होता है 'मैं' के निवेदन से अर्थात् आत्म-निवेदन से। विनम्रता एवं अपनायत के भाव में डूबा हुआ अभ्यासी का 'मैं' पुकार उठता है कि 'मैं' 'तेरा' हूं। क्रमश: मिलन की अधीरता, वियोग की व्यथा से कुछ ऐसी तड़प उठती है कि मैं अर्थात् अहं का पिघलना आरम्भ हो जाता है। परिणाम स्वरूप श्री बाबूजी द्वारा 'अनन्त-यात्रा' पुस्तक में भी लिखे पत्रों के अनुसार लय-अवस्था का आरम्भ होकर लय-अवस्था की परिपक्व-अवस्था भी आ जाती है। पुन: उसमें भी बका-दर-बका की हालत पैदा हो जाती है और लय- अवस्था की परिपक्व अवस्था भी ईश्वरीय-गति में विलय हो जाती है। तब दो शब्द 'मैं और तू' भी मानों श्री बाबू जी महाराज की कृपा से अपना अस्तित्व खो बैठते हैं। जानते हैं क्यों? क्योंकि मिलन में अस्तित्व नहीं होता है 'सत्यता' ही होती है। कदाचित् इसीलिए इस पुस्तक के दो शब्द भी मौन हो गये हैं।

वास्तविकता तो यह है कि परम विभूति श्री बाबूजी महाराज का नेह सहज-मार्ग साधना के द्वारा प्राणिमात्र के लिए आवाहन है, निमन्त्रण है भूमा के देश का अर्थात् वतन की वापसी का। आज इस पुस्तक के ये दो शब्द 'मैं और तू' मानव-जीवन को सार्थक बना देने हेतु मुखरित हो उठे हैं मैं का उनमें ही विलीन हो जाने के लिए।

एक आवश्यक बात और लिखनी है कि मेरी एक पुस्तक "कौन थे वे" तो प्रश्न था अभ्यासियों का कि 'आपके बाबूजी कैसे थे? कौन थे?" इन्हीं प्रश्नों का उत्तर मेरी उक्त पुस्तक थी। किन्तु यह पुस्तक, 'कौन हैं ये' एवं 'कैसी है यह

दिव्य-छवि'' जो दर्शनीय है। कौन है इस दिव्य-छवि का दैविक-साकार रूप जो अंतर्ध्यान रहते हुए भी हमारे मन, प्राण में समाया हुआ है। यह एक दैविक तथ्य है, कि यहां (संसार में) शरीर की तो महा-समाधि होती है किन्तु अवतार एवं दिव्य विभूति, अपने दैविक संकल्प के पूरा होने के पश्चात् भी उस अपने सँवारे हुए सतयुग की 'मालिक' होती है। तब भी वह कैसे अपने कार्य में रत रहती है, इस तथ्य को उजागर करने के लिए ही अपने श्री बाबूजी के दिये हुए पुस्तक के शुभ-नाम ''वह दिव्य छवि'' को लिखकर मेरी यह लेखिनी स्वयं को धन्य करने जा रही है और कैसी है वह दिव्य-छवि को आप सबके समक्ष उतार पाने का प्रयास उनकी बेटी (कस्तूरी) को धन्य बनाने जा रहा है।

- ✪ Pure love में unconcious- devotion रहता है। Adultrated love में concious रहती है। (श्री बाबूजी)
- ✪ Divine-Charactor के माने हैं कि हर काम स्वत: ही बिल्कुल ठीक हों। (श्री बाबूजी)
- ✪ ध्यान अभ्यासी के हृदय को Vaccu बनाता है और खाली जगह में चीज़ स्वयं ही भरने लगती है। यही मजबूरी मुझे मज़बूर कर देती है अभ्यासी को शीघ्र बढ़ाने के लिये। (श्री बाबूजी)
- ✪ वह साधना, साधना ही नहीं, जो हमारे अंदर बदलाव न ले आवे। (श्री बाबूजी)
- ✪ जब मैं कहते हुये, मैं का यह बोध नहीं रहता है कि यह किसके लिये कहा जा रहा है, तब अहंता के स्थूल-बंधन से हमें छुटकारा मिल गया है समझना चाहिये। (श्री बाबूजी)
- ✪ हम तो सेवा भाव लिये हुये हैं, इसीलिये लोग हम पर नाराज़ भी हो सकते हैं क्योंकि सेवक पर नाराज़ होने का सबको हक़ है। (श्री बाबूजी)

कैसी है वह दिव्य छवि

युग में ठहराव आया। धरा की आत्मा ने अँगड़ाई ली और प्रकृति की शक्ति में स्पन्दन आया। फलस्वरूप आदि-शक्ति में एक संकल्प कौंध गया कि ''प्राणिमात्र के अन्तर में ईश्वर-प्राप्ति की चाह पुनः सजग हो उठे''। अन्ततः यह संकल्प एक सूफ़ी संत के अन्तर को छू गया। सूफ़ी जागरूक हो उठे, उन्होंने यह दैविक-कार्य अपने प्रिय सूफ़ी शिष्य मौलवी साहब को सौंप दिया और एक दिन? इस संत ने दैविक-संकल्प को पूर्ण करने वाले आध्यात्मिक-महापुरुष को ढूँढ़ ही लिया। यह आध्यात्मिक-महापुरुष और कोई नहीं-हमारे समर्थ सद्गुरू श्री रामचन्द्रजी महाराज (लालाजी साहब, फतेहगढ़) ही थे।

जब गुरू द्वारा सौंपे गये दैविक कार्य को पूर्ण करने का बीड़ा लालाजी साहब ने उठा लिया तो फिर दैविक ओर से इसे पूर्ण कर पाने का उपाय भी उनके अंतर में कौंध गया। आतुरता भरे हृदय से ओत-प्रोत, उनकी (लालाजी साहब की) प्रार्थना जब आदि-शक्ति के मूल श्रोत भूमा को स्पर्श कर गई तो दिव्य फलस्वरूप, दिव्य-विभूति श्री रामचन्द्र जी महाराज (शाहजहाँपुर-यू.पी.) के नाम से समस्त को पावन बनाने के लिए धरा पर उतर आई। उनके दिव्य-चरण द्वय पृथ्वी पर नव युग के निर्माण हेतु थिरक उठे। अब हम कैसे जानें कि ''कौन हैं ये एवं कैसी है उनकी दिव्य छवि''। इनके लिए तो यह वाक्य सत्य की तरह ही उज्जवल एवं पावन है कि 'सादगी खुद इनका नकाब बन गई थीं। अब आप ही बताइये कि किस लेखिनी में यह क्षमता है जो सादगी के नकाब को उठाकर यह बता सके कि 'कैसी है वह दिव्य-छवि।'

श्री बाबूजी महाराज को 'कुछ' मानकर चलने के लिए मेरा अन्तर कभी राज़ी नहीं हुआ कदाचित् इसलिए कि वे मुझे दिखाना चाहते थे कि 'वे कौन हैं?' आज जब यह लेखिनी उनके दिव्य-चरणों की शरण पाकर समस्त के हित यह स्पष्ट भी करने जा रही है तो मैंने पाया कि लेखिनी का मुख उनका साक्षात् पाते हुए गद्गद् हो उठा है। मानो वे अपने सतत् एवं शाश्वत् विराट-स्वरूप में सबको समेटे हुये यह संदेश दे रहे हैं कि 'ओ, धरती पर विचरण करने वाले प्राणियों! यदि तुम्हें चाह ही करनी है तो भूमा तक पहुँचने की तड़प पैदा करो।'' जानते हैं क्यों? क्योंकि वे भूमा के गोपाल के रूप में हमारे लिए अवतरित हुये हैं और इसीलिए आज हमारे लिए दिव्य गतियों को प्राप्त करना भी सरल हो गया है।

यह सत्य तो स्पष्ट ही हो गया है कि उनकी सहज मार्ग साधना का वरदान पाकर मुझे जब 'मोक्ष' की गति प्राप्त हुई थी तथा उसके पश्चात् 'मुक्ति' (लिबरेशन) की श्रेष्ठ-गति को भी जब उन्होंने मेरे अन्तर में उतारा था; तब परमानन्द में डूबी हुई अनुभूति अभ्यासी-भाइयों के प्रश्न का उत्तर बता सकी थी कि 'कौन थे वे'? और आज यह सत्य तो मानो स्वयं ही मुखरित होने जा रहा है कि 'कैसी है वह दिव्य-छवि' जो मुझमें उतारी हुई हर पूर्व दशा का समक्ष में अक्स देकर मानों मुझे इस तरह से शिक्षा दे रही है कि अपने अभ्यासी बन्धुओं के अन्तर में भी मैं दैविक-गतियों को उतार सकूँ।

वास्तविक तथ्य तो यही है कि यह दिव्य छवि स्वयं ही लेखिनी द्वारा पुस्तक के रूप में अपने को समस्त के हित जितना स्पष्ट करती जायेगी, उतना ही उनकी यह बिटिया आप सबके समक्ष रखती जायेगी। आज भी लेखन की पहल वह नज़ारा आपके समक्ष उतारने जा रही है जो उसके (लेखिनी के) समक्ष व्याप्त है। यह रहस्य मैं अब समझ पाई हूँ कि साधन काल में तो उन्होंने अपनी दैविक-दृष्टि की ओट देकर मुझे प्रथम तो परम-साक्षात्कार का पसारा दिखाया, पुनः उस ईश्वरीय-छवि या दिव्यता में मुझे लय कर दिया था। तत्पश्चात् जो दिखाया है उसे लिख पाने में आज लेखिनी स्वयं को ही भूली जा रही है। अब आप ही बतायें कि मैं कैसे कह पाऊंगी कि 'कैसी अनुपम है वह दिव्य-छवि'।

शिकवा तो यह है कि सहज-मार्ग साधना को उतारने वाली वह अनुपम एवं दिव्य-छवि अंतर्ध्यान रहते हुए भी क्यों युग के ध्यान में समाई हुई है। कदाचित् इसलिए कि युग को सँवारने वाली, धरा पर उतरी हुई दिव्य-विभूति (श्री बाबूजी) युग को ही अपने ध्यान में पिरोये रखती है। तभी तो आज भी वह दिव्य-छवि समक्ष में अपनी मधुर मुस्कान बिखेर कर हम अभ्यासियों में ही नहीं बल्कि युग के प्राणों में अपनी दिव्य-प्रियता का प्राण फूँक रही है! मानों युग को संदेश दे रही है कि तेरे मुस्कुराने के दिन आ गए हैं। धरा से लेकर आकाश तक को अपनी बाल्यवत्-मधुरता की गोद में लेकर मानों वे उनके सिर पर अपने स्नेह का वरद-हस्त फेर कर कह रहे हैं कि अब दैविक सबेरा होने का समय आ गया है। मुझे लगता है कि सच ही वे अपने अलौकिक प्रेम के जल से पखार कर धरा को इस योग्य बना रहे हैं कि उनके दिव्य चरणारविन्दों के रज-कण धरा के कण-कण को दिव्य प्रकाश से प्रकाशित कर दें। मुझे यह कहना और भी अच्छा एवं सत्य लग रहा है कि उनके दिव्य-रज कणों की धूनी रमाकर अब यह पृथ्वी भी परमानन्दमय जश्न मनायेगी। मैं देख रही हूं कि दिव्य-विभूति बाबूजी के दैविक-संकल्प का कार्य अब उजाले में आता जा

रहा है क्योंकि समय खुद इसकी प्रतीक्षा कर रहा है। ऐसा क्यों है? जानना चाहेंगे आप तो सुनिये। उनके दिव्य-प्रेम की आहुति ने युग की आत्मा को झकझोर कर, अपनी आदि-शक्ति (भूमा) से इसका दामन स्वच्छ करने की ठान ली है। तभी तो अभ्यासियों के अन्तर्मन को परम-लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति का पुन: स्मरण करवाकर एवं अपनी दैविक प्राणाहुति का प्रवाह देकर, मानव-मन को जागृति प्रदान करते हुए इन्होंने अपने दैविक संकल्प को कार्यान्वित् करने की पृष्ठभूमि तैयार की है।

अब ज्यों-ज्यों उनका यह कार्य उभार पर आकर स्पष्ट होता जायेगा, मानव में आध्यात्मिक-चेतना के साथ उनके दिव्य-प्यार की वर्षा के साथ माँ के प्यार के सदृश ही उनके दुलार की देखभाल भी मिलती रहेगी। उनकी यही निगाह मानव की सुस्ती को दूर करके इसे ऐसा चुस्त बना देगी कि मदहोश सा वह पुकार उठेगा कि 'देर न कर, चल, अब पा यार को' अर्थात् ईश्वर को। अब आप ही बताइये कि कौन लेखिनी ऐसे दैविक एवं अनन्त रहस्य का उद्घाटन कर पाने के लिए समर्थ हो पाती यदि वे स्वयं ही अपने वरद-हस्त का सहारा देते हुए इसे चेतन न करते। तभी तो यह इस सच्चाई को लिख ही बैठी कि 'मैंने तुम्हें देखा है तुम्हारे ही उजाले में।'' ईश्वर करे सभी इस दिव्य-उजाले में खुद को शीघ्रातिशीघ्र खो दें और उस अनुपम दिव्य-छवि की दिव्य-दृष्टि द्वारा उनके (बाबूजी के) संकल्प को पूर्ण करने में सहयोग दें। तभी इस सत्य को पहचान पायेंगे कि कौन हैं ये एवं वह अनुपम दिव्य-छवि कैसी है। किन्तु वास्तव में यह जिज्ञासा मनुष्य की नहीं है, बल्कि युग की है जिसका समाधान युग-प्रवर्तक द्वारा उठवाई गई लेखिनी ही कर सकेगी।

एक सत्य मैं आपके समक्ष यह भी स्पष्ट कर दूँ कि संसार तो लेखिनी से आशा करता है कि वह लिखे कि 'कौन हैं ये' किन्तु मैं क्या करूँ जबकि हर पल मेरे समक्ष उनकी दिव्य-छवि मुस्कुराती हुई मुझे ही नहीं, बल्कि युग को संवारने का कार्य कर रही है तभी तो आज यह लेखन स्वयं ही बोल उठा है कि ''कैसी है वह अनुपम दिव्य-छवि।''

आज मुझे सिखाने के हेतु उन्होंने वह दिव्य-दृश्य पुन: मेरे समक्ष बिखरा दिया है कि परम-साक्षात्कार देने के पश्चात कैसे और क्यों उन्होंने ईश्वरीय मुख्य केन्द्र की परम शक्ति में मुझे मिला दिया ताकि मेरा यह लेखन मेरी इस प्रार्थना को सत्य कर दे कि 'यह दैविक-दृश्य समस्त के भाग्य में प्रवेश पाये', तभी तो यह सफल भी हो सकेगा। किन्तु यह क्या? मैं देख रही हूँ कि 'तुम्हें जान लेने' की दशा में मैं 'तुम' न हो पाऊँ- इसीलिये आनन-फानन (शीघ्र) ही उन्होंने मुझे सत्य-पद

अर्थात दैविक-द्वार पर खड़ा कर दिया। यह सिखाने के लिए कि समस्त के हित में इस परम-गति की प्राप्ति संभव हो गई है कदाचित् इसीलिए इस योग्य दूसरों को बना सकने की क्षमता में भी मुझे लय कर दिया। तभी तो मैं ऊपर लिख सकी हूँ कि 'ईश्वरीय मुख्य-केन्द्र' की परम-शक्ति में मुझे मिला दिया''। किन्तु आश्चर्य तो यह है कि अनुभूति यह बता रही है कि मानों मैं नितान्त खाली हो गयी हूँ और इस द्वार पर खड़ी 'श्री बाबूजी' की प्रतीक्षा में रत हुई मानों चिर निद्रा में विलीन हो गई हूँ। अरे यह क्या? तभी स्वत: पलक खुलते ही वे समक्ष में थे और उनकी दिव्य-मुस्कान मुझे अपनी ओर खींच रही थी। जानते हैं फिर क्या हुआ? यह तो मैं आपके समक्ष आज स्पष्ट करने जा रही हूँ कि कैसे उन्होंने अपने दैविक-संकल्प में प्रवेश देकर अंतिम-सत्य के क्षेत्र की सीमा के अन्दर सेंट्रल-रीजन में प्रवेश दे दिया था। तब इस दैविक-आश्चर्य के सहित मानों आध्यात्मिक परम-गतियाँ सदैव के लिए साक्षात्कार की पलकों में बन्द हो गई थीं। अभ्यास-काल में श्रेष्ठ-गतियों की अनुभूति जो बोलती थी वह दशा के रूप में मैं अपने बाबूजी को लिखती रहती थी। किन्तु अब? हालतें मेरे समक्ष में व्याप्त होकर मानों मुझसे कहती हैं कि 'हमारे बारे में कुछ लिखो' मानों ये स्पष्ट करना चाहती हैं कि इन्हें मुझमें उतारने वाले ये कौन हैं। संगम भी तो भला सा ही है। न तो मुझे यह मालूम है कि कौन हूँ मैं? और जिनके विषय में लिखकर आज यह पुस्तक स्वयं को धन्य बनाने जा रही है- वह कौन हैं, यह भी तो मुझे नहीं मालूम है। लालाजी साहब के कथनानुसार ''तुम (बाबू जी महाराज) अपना सब्स्टीट्यूट (Substitute) नहीं बना सकते हो क्योंकि तुम नहीं जानते हो कि तुम कौन हो?'' अब आप ही बताइये कि हम अभ्यासियों को अन्तिम सत्य के अनन्त क्षेत्र में प्रवेश देने वाले हमारे बाबूजी कौन हैं? यह अनन्त सत्य तो स्वयं ही मुखरित होगा। जैसा कि लालाजी साहब की शान में बाबू श्री मदनमोहन जी द्वारा लिखे गये कसीदे में खुद लालाजी साहब का कथन भी मुखरित हो उठा था कि -

''मेरे परवानों की खातिर शम्मा जल उट्ठेगी खुद।
खुद-ब-खुद दौड़ेंगे उस पर तालिबाने-मारिफ़त''॥

अत: इनके बारे में कोई क्या कह सकेगा जब तक कि लेखिनी को 'उनके' ही हस्त-कमल का पावन-स्पर्श न मिले।

इतना ही नहीं, कदाचित् हर परम-गति को पुन: मेरे समक्ष निखार कर उसकी शक्ति एवं दिव्यता को भी प्रत्यक्ष दिखलाने की आज उन्होंने ठान ली है। तभी तो एक दिन बरामदे में बैठी मैं सहज-मार्ग एम्बलम की ओर देख रही थी अथवा

यह कहूँ कि 'सहज-मार्ग' एम्बलम मुझे देख रहा था। जानते हैं क्यों? क्योंकि इसमें अंकित श्रेष्ठ दशाओं को अपनी इच्छा शक्ति द्वारा यात्रा कराते हुये मेरे बाबूजी मुझे अपने देश (वतन) ले गए थे। अचानक जब साक्षात्कार की परम-गति स्वत: ही समक्ष में व्याप्त हो गई तो मैं पहिचान गई कि अभ्यास काल में जब श्री बाबूजी ने ईश्वरीय गति में मुझे प्रवेश दिया था वही दृश्य मेरे समक्ष आज व्याप्त हो गया था। मैंने तुरन्त ही लेखिनी का दामन थाम लिया क्योंकि मुझे लगा कि वे ईश्वरीय गति की बारीकी के भेद को मेरे समक्ष खोलना चाहते हैं और यह भी इसप्रकार कि उनकी बिटिया को (मुझे) यह शिक्षा भी मिल जायेगी कि कैसे उन्होंने मुझे इस परम-गति में प्रवेश दिया था। यह सत्य ही था क्योंकि दृष्टि के आगे से वह अनुपम दैविक-प्यार भूलता ही नहीं है कि उन्होंने साक्षात्कार की दशा और मेरे बीच में स्वयं को पारदर्शी के रूप में रखकर ही मुझे परम साक्षात्कार प्रदान किया था। इसका कारण लिखने में आज यह लेखिनी आनन्दमय होकर थिरक उठी है। महत् ईश्वरीय-शक्ति के समक्ष भला ठहरा भी कैसे जा सकता था क्योंकि जितनी सी देर में मेरे बाबूजी अलख को लखाते, उतनी सी देर में तो परम ईश्वरीय-शक्ति का दैविक-आकर्षण मुझे हमेशा के लिए अपने अंक में समेट लेता। ऐसा करने का यह दिव्य कारण भी तो उनके अतिरिक्त भला कौन स्पष्ट कर पाता कि मैंने पाया था कि मानव-लक्ष्य 'ईश्वर का साक्षात्कार' तो अब पूर्ण हो चुका था किन्तु अब 'ईश्वर प्राप्ति' का लक्ष्य श्री बाबूजी ने इसीलिए रखा था कि अभ्यासी को ईश्वरीय शक्ति में प्रवेश देकर परम-साक्षात्कार की परम-शक्ति में भी नहला दें, ताकि वह भूमा के वैभव, सेन्ट्रल-रीजन के द्वार अर्थात् सत्य-पद पर खड़ा हो सके। उनके प्यार की इस छलकन ने ही तो अपनी निगाह को पारदर्शी बनाकर पलक मारते परम साक्षात्कार की परम शक्ति में मानो स्नान देकर मुझे भूमा के क्षेत्र में स्थापित कर दिया था। मैंने देखा था कि स्वयं तो मुस्करा कर मानों क्षणिक अंतर्ध्यान भी हो गये थे परन्तु मुझे संभाले हुये भी थे। सच तो यह है कि आज यह लेखिनी इस दैविक-लेखन को लिखने में स्वयं की सुधि-बुधि खोकर मानों मुझे भी अंतर्ध्यान किये जा रही है। कृत्कृत्य हुई यह, आपके समक्ष इस दैविक सत्य को उजागर करना चाह रही है कि चालीस बयालीस वर्षों पहले मुझमें उतारी हुई इन दिव्य-गतियों का दिव्य-प्रसाद आज समस्त को मिल सकता है। ऐसा वरदान देने के लिए ही तो आज इस पुस्तक में लिखवाने के लिए श्री बाबूजी समस्त गतियों को पुन: समक्ष में फैलाते जा रहे हैं। भला आप ही बतायें कि कौन बतायेगा यह कि 'कौन हैं ये' एवं 'कैसी है यह दिव्य छवि' जिन पर यह पुस्तक बलिहार

हो गई है। मुझे ऐसा लगता जा रहा है कि इस बहाने समस्त के लिए मैं इस दैविक कार्य में सक्षम हो सकूँ, यह प्रसाद भी दैविक-शक्ति के रूप में मुझे मिल रहा है। उनका यह कथन अब प्रत्यक्ष हो गया है कि ''ब्रह्म-विद्या पढ़ाई नहीं जाती है, यह तो विराट-हृदय से हृदय में उतारी जाती है।'' इसीप्रकार आध्यात्मिक प्रशिक्षक उनकी कृपा से प्राणाहुति शक्ति का प्रवाह अभ्यासी हृदयों में दे रहे हैं, किन्तु आध्यात्मिक गतियों से अभ्यासी हृदयों को कैसे सजायें यह तो गतियों को समक्ष में फैलाकर ही सिखाया जा सकता है। सहज-मार्ग शिक्षा भी इस प्रकार की है कि अभ्यासी का अनुभव स्वयं बोल उठे। आगे चलकर अनुभूति भी जब परमानन्द की रसानुभूति में पग जाती है तब श्री बाबूजी के कथनानुसार कि अन्तिम सत्य के आनन्द को यूँ कह लें कि 'संग-बेनमक, अभ्यासी हृदयों में प्रत्यक्ष हो उठता है अर्थात् परमानन्द की रसानुभूति में पग जाने के उपरान्त ही अभ्यासी इस अन्तिम-गति को प्राप्त करने योग्य बन जाता है।

कौन लेखिनी लेखन द्वारा कह पायेगी कि ''कौन हैं ये'' एवं कौन तूलिका उस दिव्य रंग में स्वयं को डुबोकर कभी हमें बता पायेगी कि 'कैसी है वह दिव्य-छवि' इतना ही नहीं कौन समझ पायेगा कि उनकी सहज-मार्ग शिक्षा पद्धति की श्रेष्ठता का महत्व क्या है? मैं तो केवल इतना ही कह सकती हूँ कि प्रथम तो उन्होंने सहज मार्ग शिक्षा प्रणाली द्वारा ईश्वरीय-देश तक हर मंडल, हर देश और हर दशा की यात्रा का ज्ञान मुझे दिया, पुन: बाबूजी ने भक्ति की अनुपम गतियों-सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य एवं सायुज्यता का मुझे अनुपम श्रृंगार भी प्रदान किया, और इनकी अनुभूतियों के महत्व को भी मुझमें उतारा। इतना ही नहीं हर मंडल, हर देश की विलायत (स्वामित्त्व) भी मुझे प्रदान की। क्या कहूँ इनके बारे में कि कैसे बाबूजी ने दिव्य-दशाओं में लय करते हुए मुझे वतन (भूमा) में पहुंचाया, पुन: वहां की जात में अपने दैविक संकल्प द्वारा स्थिरता भी प्रदान की थी। अब दैविक-शिक्षा इसलिए प्रदान कर रहे हैं जिससे अपने अभ्यासी भाई-बहिनों में उनकी यह बिटिया दिव्य-गतियों को उतार पाने में समर्थ हो सके। यही कारण है कि वर्षों पहले मुझमें उतारी हुई हर दशा को समक्ष में फैलाकर उनमें लय करने का तरीका भी बता रहे हैं। इसके लिए तो उन्हें बहुधा उस देश एवं स्थान का चित्र भी सामने लाना पड़ता है। तभी तो आज लेखिनी अपने लेखन को यह लिखकर धन्य बनाना चाहती है कि 'कैसी है वह दिव्य छवि' जो समस्त के लिए आज दिव्य-देश का नेह-निमन्त्रण लिए खड़ी है।

आज मुझे स्मरण आ रहा है श्री बाबूजी का वह कथन कि ''दिल में दर्द पैदा करो बेटी'', उस समय तो मैं उनके कथन का अर्थ नहीं समझ पाई थी क्योंकि उस

समय की आन्तरिक-दशा के रूप में तो मुझे ऐसा लग रहा था कि मेरे अन्तर में एवं विचारों में तो दिव्य-आविर्भाव की दशा को प्रत्यक्ष कर पाने की फ़िक्र,तेज़ी एवं असीम तड़प थी। वह तो मेरी आत्मिक-दशा थी किन्तु अब मानों वे मुझे दिखा रहे हैं कि उस असीम तड़प के सहित जो भी अनुभूति अन्तर में हो, उसे जी (हृदय) आत्मसात् करता चले तो फिर शेष क्या रहा बस ''दिल का दर्द''। मुझे स्मरण आ रहा है कि इस अमूल्य दर्द को लेकर ही मेरे गीत की पंक्ति स्वत: ही गुनगुना उठी थी कि ''तड़प को देखा तड़पता, प्यास खुद को पी गई। हर तरफ़ पाया तुम्हें यह बात थी कैसी नई।।'' आज प्रतिक्षण मुझे लग रहा है कि अपने पूर्व कथन (दिल का दर्द) के अर्थ को मेरे समक्ष फैला कर वे लेखन को अनमोल बना रहे हैं। इतना ही नहीं उनका दिव्य-गौरव मेरे लेखन को अहंकार रहित बना देने के लिए ही मुझे गुम किये रहता है। आज मुझे यह भी स्मरण आ रहा है कि पूज्य लालाजी साहब ने बाबूजी से कहा था कि '' तुम्हारी सादगी ही तुम्हारा नकाब बन गई है।'' तब तो सच ही उनकी हर बात सुनकर अन्तर मुग्ध हो जाता था और पुन: इसे सुनने को जी चाहता था। परन्तु आज? जब इस दैविक-कथन की यथार्थता मेरे समक्ष में आई तो मानों मेरा अन्तर बलिहार हो उठा है और खुद को भी विस्मृत कर बैठा है। मैंने पाया कि वैसे तो सभी लोग सादगी को 'सादा रहनी' ही समझते हैं परन्तु यह अर्थ तो भौतिक हो सकता है, किन्तु आध्यात्मिक क्षेत्र में एक दिव्य-विभूति के लिए इसका अर्थ होता है ''जो खुद का पता ही न पाये।'' और आज! इस दैविक कथन का अर्थ जो समक्ष में स्पष्ट है, इसको लिख पाने में लेखिनी मानों दम तोड़ देने को तत्पर है। जानते हैं क्यों? इसलिए कि उनकी (बाबूजी की) असलियत का रहस्य भी रहस्य ही न बना रहे, यह कदाचित् आदि-शक्ति को भी सहन नहीं हो सका इसीलिए आज ''इनकी सादगी क्या है?'' यह लिखने का परम-सौभाग्य मेरी लेखिनी ने पा ही लिया है। देखिये, उपर्युक्त सादगी के रहस्य का भी आज भेद खुल रहा है।

'सादगी' दैविक-आवरण है आदि-शक्ति का, जो कि श्री बाबूजी महाराज की आदि-छवि को स्वयं में छुपाये बैठी है। कैसे और क्यों ? यद्यपि आदि-शक्ति का धरा पर अवतरण तो युग की आवश्यकता एवं दैविक इच्छा ही थी किन्तु धरा पर अवतरित उस परम आदि-शक्ति को उसके नग्न (असल) स्वरूप में देख पाने का भला साहस ही कौन कर पाता, कदाचित् ईश्वर भी नहीं। क्योंकि ईश्वर में शक्ति को जज्ब करने की क्षमता ही कहाँ है, इसीलिए सादगी के दैविक आवरण ने अपनी ही नादान हालत को स्वीकार कर लिया और श्री बाबूजी महाराज के वाह्य-स्वरूप में समा गई। अब हमें जब उनकी कृपा मिलती है तो दैविक-सादगी के आवरण

स्वरूप मात्र छींटे के रूप में ही हमें प्राप्त होती है। शरीर में भी कहाँ ऐसी क्षमता है जो आदि-शक्ति का दामन भी स्पर्श कर सके। इतना ही नहीं मैंने तो अब यह भी पाया है कि इस दैविक-सादगी को भी श्री बाबूजी के लिए, समर्थ श्री लालाजी साहब की दिव्य-मौजूदगी का स्पर्श पाना ज़रूरी हो गया था। क्योंकि आदि-शक्ति के सतत् प्रवाह को वहन कर पाने के लिए दैविक-विराट-स्वरूप से सम्बन्ध पाना ही आवश्यक होता है। इसलिए आदि-सादगी ही आदि-शक्ति का जामा या आवरण बन गई। समर्थ श्री लालाजी साहब का श्री बाबूजी में मर्ज (Merge) होने की अनुपमेय अवस्था का कारण भी यही है। श्री बाबूजी के इस कथन की स्पष्टता को भी इसने व्यक्त कर दिया है कि 'मैंने लालाजी साहब के अलावा किसी को नहीं देखा है।'' आध्यात्मिक क्षेत्र में ऐसे अनन्य एवं अनुपमेय प्रेम का उदाहरण क्या कभी कहीं मिल सकता है? अब तो यह निर्णय मैं आपके ऊपर ही छोड़ती हूं कि कौन हैं ये और कैसी है यह दिव्य-छवि।

मुझसे आपका प्रश्न है कि वह अनुपम दिव्य-छवि कैसी है? जिनमें लय हुई आप आज भी उनकी चर्चा चलते ही बलिहार हो जाती हैं; तो सच तो यही है कि यह प्रश्न आपका नहीं है बल्कि स्वयं युग का है इसीलिए तो यह प्रश्न आज दैविक-प्रश्न बन गया है। यही कारण है कि युग-प्रवर्तक द्वारा उठवाई गई लेखिनी ही आपको बता सकेगी कि वह दिव्य छवि किनकी है? मुझे तो ध्यान की चरम सीमा प्रदान करके बाबूजी ने समस्त के लिए यह दिव्य-संदेश भी प्रदान कर दिया है कि मैंने ''आध्यात्मिकता के लिए किसी को भी मोहताज नहीं रखा है।'' मैंने तो यह पाया है कि मुझे ध्यान की गहराई में उतार कर पुन: अपनी दैविक-विराट-छवि मेंलय कर लेना मानों उनकी सरस और सहज आदत या बान ही है। सहज-मार्ग पद्धति द्वारा ध्यान में डूबे हुये हम अभ्यासियों के अन्तर में इस प्रश्न का उत्तर अनुभूति रूप में स्वत: ही उतरता है कि ''कौन हैं ये'' अर्थात् हमारे बाबूजी, जिनकी दिव्य-छवि ने हमें अपने में लय करके ही हमें दिखाया है कि ''कैसी है उनकी वह दिव्य-छवि'' जिसका आदि अनन्त-शक्ति में समाहित है। आज मेरे समक्ष यह भी स्पष्ट हो गया है कि जिन अपने बाबूजी महाराज को मैंने शाहजहाँपुर में सामने बैठे देखा था, उनमें लय-अवस्था प्राप्त होने पर जब उनकी उस आदि अनुपम-छवि का साक्षात्कार प्राप्त हुआ तो मुझे लगा कि यही साक्षात्कार है। वह दिव्य एवं विराट छवि आज भी मेरे समक्ष में स्पष्ट है जो मेरी दैविक-चेतना के रूप में लेखिनी को थामे हुये हर दैविक-रहस्य को समस्त के लिए उज्जवल कर देने के लिए तत्पर हैं। किन्तु मेरे श्री बाबूजी महाराज ने मुझे लिखा था कि

"लालाजी का शुक्रिया है कि ईश्वर का साक्षात्कार तो तुमने पा लिया है, अगर हिम्मत हुई तो इसके आगे का नज़ारा भी देखोगी।" सत्य ही आज चालीस-पैंतालिस वर्षों पहले आध्यात्मिक-दैविक गतियाँ जो उन्होंने मुझमें उतारी थीं, और मुझे उनमें (गतियों में) लय भी करते गए थे, आज यह पुस्तक लिखते समय हर गति को समक्ष में इसप्रकार स्पष्ट फैला देते हैं कि यह मूक लेखिनी स्वयं ही तत्पर हो जाती है उनका ब्यौरा देने के लिए।

मैं तो मात्र इतना ही जान पाई हूँ कि-

'मैं निरगुनियां गुन नहिं जानूँ
एक गुनी के हाथ बिकानी॥'

इसीलिए तो आज मैं आपको इतना ही बता सकूंगी कि इस निर्गुनियाँ के गुनी ये बाबूजी ही हैं।

- ध्यान आध्यात्मिकता की नींव है। (श्री बाबूजी)
- अगर ध्यान में तुम्हें कोई भी फ़ीलिंग होती है तो उसे ध्यान में रखकर उसमें ही अंतर को डुबोये रहने की कोशिश करो। (श्री बाबूजी)
- जब तुम्हारे दिल में अंधेरा था तब डिवाइन-लाइट की ज़रूरत को मैंने पूरा किया- अब तो तुम्हें 'उसे' खोजना है जो तुम्हारे मन-मंदिर में विद्यमान है। उसके खोजने में जो फीलिंग बदलती जाये उसमें ही अंतर को भींगा रखने की कोशिश करो। जैसे जब हमें कोई चीज़ लेनी होती है तो हम लाइट जलाते हैं और वह चीज़ ही उठाते हैं जिसके लिये हम आये थे। किन्तु दिन का उजेला हो जाने पर हम वस्तु का ही ध्यान रखते हैं। (श्री बाबूजी)
- ध्यान में सजगता (alertness) और जागरूकता (awareness) ज़रुरी है। (श्री बाबूजी)

सहज-मार्ग साधना में अनन्य अनुभूतियाँ

श्री रामचन्द्र मिशन के अन्तर्गत, सहज-मार्ग साधना-पद्धति ईश्वर की आराधना की एक अद्भुत एवं बेमिसाल पद्धति है। जिज्ञासा तो सबको यह होगी ही कि आखिर ऐसा क्या है इस पद्धति में? तो सुनिये, अभ्यास द्वारा मैंने यह पाया कि इसमें श्री बाबूजी महाराज द्वारा पाई हुई प्राणाहुति-शक्ति मानव के अन्तर के विकारों को साफ़ करके अन्तर में सोई हुई ईश्वर प्राप्ति की प्यास को कुरेद कर जाग्रत कर देती है। यह पद्धति प्राणियों में आध्यात्मिक विकास के लिए एक नवीन दिशा है, जिसमें ईश्वरीय प्रकाश में डूबे रहने के ध्यान रखने का अभ्यास अन्तर के भौतिक अँधेरे को दूर करके ईश्वरीय-प्रकाश द्वारा मानव मन में आत्मिक-विकास को उज्जवल कर देता है।

सहज मार्ग साधना पद्धति, श्री बाबूजी महाराज की दैविक-प्राणाहुति-शक्ति से ओत-प्रोत, दैविक-चेतना है। इस साधना द्वारा अनुभव बताता है कि मानों ईश्वर से जो हमारे अन्तर में मौजूद है, हमारा बहुत पुराना सम्बन्ध है। यह पद्धति ब्रह्म विद्या का प्रकाशन है क्योंकि मेरे अनुभव ने बताया है कि इस साधना द्वारा प्रथम तो हृदय ईश्वरीय प्रकाश से प्रकाशित हो उठता है फिर जब कुल सिस्टम भी ईश्वरीय प्रकाश से प्रकाशित हो उठता है तब ब्रह्म की अनुभूति भी सहज ही प्रत्यक्ष हो जाती है। यह साधना-पद्धति ईश्वरीय प्रेम के श्रोत से योग पाये हुए कबीर की ''सुरत सुहागिन है पनिहारिन, भरै ठाढ़ बिन डोर रे'' का ही सुन्दर प्रतीक है। जिसके द्वारा एक दिन ईश्वरीय सामीप्यता का आभास हमारे ध्यान में इस क़दर प्रवेश पा जाता है कि हम खुद को ही भूल बैठते हैं। तभी एक दिन जब स्वयं में दैविक अनुभूति अर्थात् सारूप्यता की आनन्दमय-गति हमसे पुकार कर कहती है कि 'ओ दीवानी! जब तेरे अन्तर में प्रियतम का आविर्भाव हुआ तो तू खुद को ही भूल बैठी है। इतना ही नहीं, परमानन्द का अनुभव तो तब हममें उपजता है जबकि मात्र ईश्वर-प्राप्ति के लक्ष्य के ध्यान में हम डूब जाते हैं जिससे ईश्वरीय-प्रकाश से हमारा अंतर स्वत: ही प्रकाशित हुआ रहता है एवं सर्वोपरि श्री बाबू जी महाराज की दैविक शक्ति का प्रवाह हमें मिलता रहता है। परिणाम स्वरूप अनजाने ही हमारे अन्तर में साँचा बंधुत्व (ब्रदर-हुड) जाग कर पनपने लगता है। श्री बाबूजी महाराज का कथन कि ''बंधुत्व की भावना ही सहज-मार्ग की जान है'' प्रत्यक्ष हो उठता है क्योंकि सबसे स्वत: ही एक आत्मिक सम्बन्ध प्रतीत होने लगता है। यह तो सहज-मार्ग साधना-पद्धति के विषय में कुछ अनुभव गम्य जानकारी है।

अब आप यह भी जानना चाहेंगे कि वास्तव में सहज-मार्ग क्या है? इसके विषय में श्री बाबूजी महाराज का कथन है कि "मैंने सहज-मार्ग कोई मार्ग नहीं बनाया है बल्कि यह नाम तो ऊपर से उतरा है।" उनके इस कथन की प्रत्यक्षता मैंने तब पाई है जबकि मन ईश्वरीय-ध्यान में कुछ इस तरह से डूब गया कि 'मैं कौन हूं' वाक्य का अर्थ ही खो गया। यह प्रेम की सहज अवस्था है जो सहज-मार्ग में सहज-साधना का प्रतीक है। इसके पश्चात् मैंने पाया कि मन उस दिव्य-विभूति में अनजाने स्वत: ही घुलने लग गया और एक दिन पूर्णतया: घुल गया। तब मैंने श्री बाबूजी को लिखा था कि 'ध्यान में मन लगा या नहीं यह मैं कैसे लिखूं क्योंकि मुझे लगता है कि मेरे मन ही नही है।' इसके पश्चात् ही श्री बाबूजी ने मुझे लिखा कि 'अब तुम्हारी 'लय अवस्था' की हालत शुरू हो गयी है और दिन-दिन बढ़ रही है', और लिखा कि "ऐसी श्रेष्ठ हालत देख कर मन चाहता है कि आध्यात्मिकता का कुल साम्राज्य ही इस पर वार दूँ।" अर्थात् प्रेम की दूसरी अवस्था अहं भाव का घुल जाना है। लेकिन प्रेम की तीसरी अवस्था अर्थात् 'लय अवस्था' की भी श्रेष्ठ दशा है। अर्थात्, ईश्वरीय गति के सहित इसकी शक्ति में भी मिलते जाना है। इतना ही नहीं आगे चलकर 'लय अवस्था' की भी भूल की अवस्था पैदा होने लगती है। यद्यपि श्री बाबूजी के कथनानुसार यह घड़ी कदाचित् किसी बिरले दीवाने को ही प्राप्त होती है। इस अनुपमेय भक्ति की प्राप्ति हमें तब होती है जबकि ध्यान में डूबे हुये, खुद को खोये हुए, हम ध्यान की धारा में प्रवेश पा जाते हैं और यह दशा ही वास्तविक सहज-मार्ग में प्रवेश पा जाने की दशा है। सहज मार्ग का योग सीधा सत्य पद तक ही होता है और आदि-धारा तो अनन्त की परिभाषा में आती है। किन्तु सहज मार्ग के ध्यान की सहज धारा में प्रवेश मिल जाने पर श्री बाबूजी की कृपा सहज ही हमें आदि-धारा में प्रवेश दे देती है जिसके फैलाव का पता हमें सेंट्रल रीजन में स्विमिंग होने पर ही मिल पाता है। सहज-मार्ग, सहज शक्ति की धारा है जो सतत् है और शाश्वत् है। यहां पहुंचने पर ही हमें श्री बाबूजी के कथन की प्रत्यक्षता सहज ही मिल जाती है कि 'सहज मार्ग' तो ऊपर से उतरा है। इस दिव्य धारा में प्रवेश पाने पर अभ्यासी ईश्वर का साक्षात्कार पाने के योग्य होता है किन्तु साक्षात्कार की परम-दशा में भी लय हो जाने के बाद ही हमें प्रथम मानव के बैठने के स्थान सत्य पद की प्राप्ति होती है। सत्य पद वास्तव, में मानव के बैठने एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में स्वत: भी पहुंच सकने का सच्चा स्थान है। सत्य पद की हालत को कबीर का यह कथन स्पष्ट कर देता है कि 'हद अनहद के बीच में रहा कबीरा सोय' अर्थात् दशा की हद सत्य-पद की तो प्राप्त हो जाती

है साक्षात्कार पाने के बाद और अनहद है कि कोई सत्य-पद पर प्रतिष्ठित करके हमें भूमा के वैभव के क्षेत्र अर्थात् सेंट्रल-रीजन में ले चले। इससे यह भी सिद्ध हो गया है कि सृष्टि के प्रथम मानव के बैठने का स्थान सत्य-पद ही है। वास्तव में सहज-धारा ही वास्तविक सहज-मार्ग है एवं आदि शक्ति की आदि-धारा ही सेंट्रल-रीजन है।

वास्तव में 'सहज-मार्ग' साधना पद्धति अनन्य अनुभूतियों का दिव्य श्रोत है। मेरी इन अनुपम अनुभूतियों का दिव्य श्रोत कौन है-यह पता लगाते लगाते पुस्तकें भी लिख गईं किन्तु लेखिनी का मुख मुझसे यही पूछता रहा कि आखिर कौन है वह दिव्य-श्रोत (निर्झर) जो स्वयं कुछ कहता भी नहीं है और कहते हुये थकता भी नहीं है। यद्यपि प्रकृति की मन्द मुस्कुराहट ने कुछ कहना भी चाहा और स्वयं विस्मृत अवस्था ने उनके विषय में कुछ कहने के लिए मुख खोला भी तो दैविक-सहज-गति ने मानों उसे चुप कर दिया। सत्य-पद ने मुझे कुछ देर स्वयं में स्थित रखकर मुख ऊपर की ओर (सेंट्रल रीजन की ओर) करके मुझे कुछ समझाना चाहा तो मानों भूमा-पति (श्री बाबूजी) ने अपने अनन्त दैविक-वैभव की गरिमा का लालच देकर मुझे सत्य-पद से उठाकर अपने दिव्य-वैभव सेंट्रल रीजन के अनन्त-क्षेत्र में प्रवेश दे दिया। इतना ही नहीं अपने दैविक-संकल्प में प्रवेश देकर भूमा के वैभव-क्षेत्र सेंट्रल रीजन में पैराते हुए अर्थात् स्विमिंग कराते हुए मुझे शून्यावस्था से भी परे जीवन विहीन जीवन (लाइफ-लेस-लाइफ) की दशा में प्रवेश दे दिया। और मेरी यह प्रतीक्षा, प्रतीक्षारत ही रह गई कि आखिर इन अनुपम अनुभूतियों का दिव्य श्रोत कौन है? और कहाँ से यह दिव्य-निर्झर श्रोत सतत् प्रवाहित है। फल यह है कि अनेक पुस्तकें लिखते रहने पर भी यह प्रश्न स्वयं में सिमटा ही रह गया। कदाचित् दिव्य-श्रोत की भी यह मजबूरी रही है कि वहस्वयं तो स्वभावत: शान्त और अविचल था किन्तु समर्थ सद्गुरू लालाजी के दैविक-संकल्प के क्षोभ के परिणाम स्वरूप अपने दिव्य-श्रोत अर्थात् केन्द्र की कल-कल करती सहज-धारा के प्रवाह द्वारा मानव के मन प्राण को विशुद्ध बना देने के लिए उसे भी किसी को अपनी शक्ति के साथ धरा को पावन एवं सौभाग्यशाली बना देने के लिए इस पर अवतरण देने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इसी कारण अनन्य एवं अनुपम अनुभूतियों के द्वारा दैविक-सम्बन्ध की सततृता प्रदान करने के लिए अपने चिरंजीवी गोपाल (श्री बाबूजी) को अपने प्यार के चुम्बन की दिव्य-मोहर लगाकर, धरा को धन्य बनाने के लिए उतार दिया था। इतना ही नहीं, जिन्होंने अपने पलकों की प्यार की पालकी का मृदु सहारा देते हुये मुझे अंतिम लक्ष्य (वतन) के द्वार में प्रवेश दे दिया था, आज वे ही उन अनन्य

अनुभूतियों को समक्ष में उजागर करते हुए इस पुस्तक के लेखन को पावन बना रहे हैं। जानते हैं क्यों? क्योंकि प्राणिमात्र के प्रति उनका प्यार भरा ममत्व हिलोरें ले रहा है- माँ के घर लौट चलने का सहज संदेशा देकर। इतना ही नहीं प्राणों की आहुति देकर मानव-मात्र के दोषों को भस्म करते हुये, हमें वतन की ओर आज वे सहज मार्ग साधना द्वारा लिए जा रहे हैं। उनके विषय में कुछ भी लिख पाने में लेखिनी खुद ही ध्यानावस्थित हो जाती है फिर कौन बताएगा कि "कौन हैं ये" और कहां है वह दिव्य श्रोत जहाँ से अभ्यासियों को दिव्य-अनुभूतियों का वरदान मिल रहा है। 'कौन हैं ये' जो हमें अपने संकल्प की परम शक्ति द्वारा उस दिव्य श्रोत से निरन्तर योग दिये हुए हैं। इसका उत्तर स्वयं दिव्य श्रोत ही दे रहा है इन पुस्तकों के माध्यम से कि आज कौन दिव्य विभूति उसकी शक्ति पर स्वामित्व पाये हुये अपने दैविक-संकल्प, कि प्राणिमात्र के अन्तर में ईश्वर प्राप्ति की प्यास जाग उठे, को पूर्ण करने के लिए परम-शक्ति को अपने विराट हृदय द्वारा समस्त वातावरण में प्रवाहित कर रही है। आध्यात्मिक क्षेत्र में बढ़ती हुई अभ्यासियों की संख्या इसका स्वयं प्रमाण भी है। समस्त में प्रवाहित इनकी प्राणाहुति शक्ति इस बात की प्रतीक है कि संसार में कहीं भी अभ्यासी जब स्वत: ही ध्यान में बैठता है तो उसे प्राणाहुति (ट्रान्समिशन) का अनुभव होता है। इतना ही नहीं, दैविक-संकल्प की उनकी इच्छा शक्ति में जब अभ्यासी की इच्छा का भी सहयोग (कोपरेशन) मिल जाता है तो योग पाते ही अभ्यासी के अंदर के सारे दोष स्वत: ही उनकी इच्छा शक्ति के दैविक योग की सामीप्यता का सेंक पाते ही उसी प्रकार पिघल-पिघल कर साफ़ हो जाते हैं जैसे चुम्बक की सामीप्यता पाते ही लोहे की ठोस वस्तुयें, कील-काँटे आदि चुम्बक से आ चिपकते हैं। तब अभ्यासी-हृदय स्वयं में ईश्वरीय उज्जवलता की झलक पाकर प्रसन्नता से झूम-झूम उठता है।

आप अब यह भी तो अवश्य जानना चाहेंगे कि ऐसा परम योग हमें कैसे प्राप्त हो पाता है और यह जानना ज़रूरी भी है। तो सुनिये, प्रारम्भ तो इस आंतरिक सम्बन्ध को ध्यान में रखने से कि 'बाबूजी हमारे हैं,' होता है। प्रथम तो हमारा विचार ही इसमें शामिल होता है। क्रमश: हमारा हृदय पुकारने लगता है "बाबूजी हमारे हैं"। और वास्तव में उनसे हमारा दैविक रिश्ता यहीं से प्रारम्भ होता है। प्राणिमात्र से उनकी इच्छा-शक्ति के योग का यही प्रतीक है, जो हमें इस प्रथम रिश्ते को स्वयं में समेट कर, इस रिश्ते का दूसरा पहलू हमें अनुभव के रूप में प्रदान करता है कि जब क्रमश: हृदय पुकार उठता है कि "हम बाबूजी के हैं।" बस फिर क्या? यह सिलसिला कितनी आध्यात्मिक गतियों को हममें उतारता हुआ एक दिन साक्षात्कार की दिशा

में हमें उनके ही हवाले कर देता है और तभी एक दिन हमारी अनुभूति द्वारा कुछ-कुछ यह पता भी डिवाइन की ओर से ही लगने लगता है कि इन तमाम दिव्य एवं अनन्य अनुभूतियों के दिव्य एवं मुख्य श्रोत ये ही हैं? मुख्य आदि-शक्ति के श्रोत की परम-शक्ति का स्वामी कौन है? इसका पता भी मुझे साक्षात्कार की दिव्य दशा प्राप्त होने पर ही मालूम हो गया था। इतना ही नहीं इससे आगे सत्य-पद पर प्रतिष्ठित करके, मुझे भूमा के वैभव के विराट् एवं अनुपम देश सेन्टर रीजन में पैराव देते हुए, ले चलने वाले मेरे बाबूजी महाराज ही थे। लेकिन मुझे भूमा के अनुपम सात द्वारों से, उसकी झलक में लय करते हुए ले चलने वाले बाबूजी मुझे इतना भ्रमित कर देते थे कि मैं उनका पता भी भूल गई थी। किन्तु पुनः क्षण भर के लिए ऐसी मृदु सामीप्यता प्रदान कर देते थे कि मुझे लगता था कि मैं यहाँ अकेली नहीं भटक रही हूँ बल्कि मेरे बाबूजी कहीं मेरे साथ ही हैं। आज मैंने पाया कि उनके कथन की गरिमा में कितनी सत्यता थी कि ''अन्तिम हालत के लिए क्या कहा जाये, बस इतना ही कह लें कि 'संग-बेनमक''। मैंने सच में यह पाया है कि यदि रह-रह कर वे अपनी मृदु सामीप्यता का आभास मुझे न देते रहते तो मैं यह भूल ही चुकी थी कि आध्यात्मिकता कोई चीज़ है, एवं साक्षात्कार कोई सत्य है।

मेरी लेखिनी आज इस सत्य को प्रगट किये बिना चैन नहीं ले पा रही है कि 'सेंट्रल-रीजन' में तो पैराव अथवा स्विमिंग श्री बाबूजी महाराज के संकल्प में प्रवेश पाकर ही पूरा होता है किन्तु मुख्य-केन्द्र (भूमा) के सप्त-द्वार में प्रवेश पाते ही समां बदल जाता है क्योंकि तब उनके पलकों की पालकी ही मात्र उनकी यात्रा पूर्ण कर पाने का एक मात्र,अभ्यासी के लिए,ज़रिया है।

सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर आदि-शक्ति के अन्तिम रहस्य की गहनता के भेद को कोई समझ ही नहीं सका। कदाचित् यही कारण है कि आध्यात्मिक ज्ञानानुभूति इस दिशा में मौन ही रही। आज मेरे श्री बाबूजी का यह कथन अक्षरशः समस्त के लिए उज्जवल हो उठा है कि ''जो कुछ भी मैं अपने साथ लेकर आया हूँ सारा लुटा करके ही छोड़ जाऊंगा, ताकि युग आध्यात्मिकता के क्षेत्र में एक नवीन एवं आदि-दिशा में श्वांस ले सके।'' आज मेरी लेखिनी भी इस सत्य को प्रगट किए बिना चैन न लेगी कि इसे स्वयं उनके ही वरद हस्त -कमलों का दैविक-स्पर्श मिला हुआ है। कदाचित् उनके लुटाये हुये इस आदि-रहस्य को प्रगट करने के लिए लेखिनी के समक्ष,उन्होंने अन्तिम सत्य की हालत को भी फैला रखा है। कैसा दैविक-नज़ारा समक्ष में व्याप्त है कि उनके पलकों की पालकी,मुझ बेखुद को,अपने दैविक-संकल्प की चूनर ओढ़ा कर सतत्,पैराव दे रही थी और अन्तिम सत्य के वैभव रूपी सागर

में उनके प्यार की चादर मुझे खुद अपने में ही भुलाये जा रही थी। जड़ समाधि की दैविक एवं सहज अवस्था मेरा रूप बन गई और खुद को ही भुला बैठी थी। फिर आप यह तो मुझसे पूछेंगे ही कि "फिर आगे सात सर्किल में तू कैसे चली?" तो मैं ज़रूर बताऊँगी कि "वहां उनकी फ़ोर्स-लेस फ़ोर्स (शक्ति-विहीन-शक्ति) ही हमें मानों यान (जहाज) के सदृश ले चल रही थी।" यहां का एक दिव्य-आश्चर्य भी आपको बताये बिना नहीं रह सकती हूँ कि तब वहां जब-जब मेरी लेखिनी ने मुझसे यह जानना चाहा कि "तू कौन है"? तो उत्तर स्वयं उनकी ओर से आता था कि "मैं" हूँ। लेकिन तब मानों मैं उन्हें भी विस्मृत कर बैठी थी और लेखिनी मात्र इतना ही लिख सकी थी कि:-

"शक्ति के रूप में जीते हैं और क्या चाहिए।" फिर भला कौन आपको बता पायेगा यह, कि कैसी है वह दिव्य-छवि जो अंतर्धान रहते हुए भी अंतर्ध्यान नहीं है, अर्थात् हमारे ध्यान के अन्तर में बसी हुई है। मैं भला उनके बारे में क्या बता पाऊँगी जबकि स्वयं दिव्य-वातावरण का समां भी आज इस सोच में है कि यह कौन दिव्य छवि आज धरा से लेकर ईश्वरीय केन्द्र तक को भी मुग्ध किये हुये है। अब आप सबसे भी यही अनुरोध है कि आप सब भी सहज मार्ग द्वारा दिव्य देश के दर्पण में कदाचित् उनका दर्शन पाकर यह बता सकें कि कौन हैं ये जो आदि शक्ति के दिव्य श्रोत की धारा को धरा पर उतार लाये हैं।

मैंने तो बस उनके द्वारा पाई हुई दिव्य-प्राण-शक्ति का कमाल भर ही देखा है जो एक दिन मुझे मेरे अस्तित्व से भी परे ले गई, और मैं सोच भी न सकी कि मैं, जिसका चलता-फिरता रूप धरती पर फिर रहा है, कहाँ विलीन हो गई। इतना ही नहीं जब मैंने पाया कि मेरे बाबू जी महाराज की दिव्य छवि का साक्षात्कार समक्ष में आया तो भूल की अवस्था भी मुझे भूल बैठी थी। जानते हैं वे ऐसा क्यों करते हैं? इसलिए कि परम दिव्य-ईश्वरीय-छवि के साक्षात्कार के मोह को हमें छोड़ पाना असंभव होता है। एक अत्यन्त आवश्यक तथ्य, जो अभी मेरे समक्ष उतरा है वह यह है कि ऊपर मैंने दिव्य-ईश्वरीय छवि के साक्षात्कार के साथ ही परम दिव्य-छवि के साक्षात्कार की भी बात कही है, जानते हैं क्यों? क्योंकि अनन्त ईश्वरीय साक्षात्कार की गति की प्राप्ति के पश्चात् ही, अपनी प्रिय दिव्य-विभूति की यह परम विशेषता मुझे प्राप्त हो पाई है कि मानव-मात्र के लिए ईश्वर प्राप्ति का संकल्प लेकर धरा पर उतरने वाले बाबूजी को ईश्वरीय-शक्ति का स्वामित्व प्राप्त है तभी तो ईश्वरीय-साक्षात्कार के मोह के बंधन को भी निवारण करके वे हमें इससे परे ले जाते हैं। कितनी दिव्य क्षमता है इनमें कि प्रथम तो मुझे ईश्वरीय-

छवि पर न्यौछावर कर दिया और इस पर भी उन्हें चैन न आया तो उस पूर्ण ईश्वरीय शक्ति में डुबोकर मुझे दिव्य तेज से ऐसा निखार दिया कि एक क्षण को मुझे लगा था कि मानों मैं दैविक तेज मंडल (औरा) में लय हो गई थी। और तब? मैं क्या और कैसे कहूँ इनके अनन्य प्यार की छलकन को जिसने मुझे इस एहसास से भर दिया कि "ईश्वर तो स्वयं ही अपना अस्तित्व भूला बैठा है, इस सोच में, कि किस दिव्य-छवि का तेज आज धरा से लेकर अनन्त तक छाया हुआ है।" अब आप ही यह अनुमान लगायें कि कौन और कैसी है यह दिव्य-छवि एवं कौन हैं ये जो अनन्त से लेकर धरा तक को दिव्य श्रोत की परम-शक्ति से नहला रहे हैं। सत्य तो यह है, कि सत्य भी तो अपनी परिभाषा से अनजान ही है। मुझे लगता है कि अनुभूतियों का श्रोत भी अपना सतत् प्रवाह देते हुए जिह्वाविहीन हो गया है। आज समक्ष में अनन्य दिव्य गतियों के रत्न बिखेर कर श्री बाबूजी मानों मुझे ऐसी दैविक-शिक्षा प्रदान कर रहे हैं कि समस्त अभ्यासी भाई-बहिनों के लिए, इन, अनन्य-अनुपम एवं दिव्य-दशाओं का परमानन्द, उनकी ही कृपा एवं शक्ति द्वारा उतार पाना सुगम हो गया है। ऐसा लगता है कि वास्तविक ब्रह्म विद्या की शिक्षा समस्त को प्राप्त हो सके ऐसी सहज शिक्षा भी वे मुझे अब प्रदान कर रहे हैं।

एक दिन श्री बाबूजी लखीमपुर में मास्टर ईश्वर सहायजी के यहाँ आये हुये थे। हम सभी अभ्यासी उनके मुखारबिन्द को निहार रहे थे। अचानक उनका चेहरा तेजोमय हो गया। हम सभी सावधान हो गये और चुप होकर बैठ गए। तभी श्री बाबूजी महाराज का मृदु स्वर सुनाई दिया। वे कह रहे थे कि "अंधेरा कहता है मैं न रहूं तो रोशनी अँधेरा हो जाए; दु:ख कहता है कि मैं न रहूँ तो सुख का अस्तित्व ही समाप्त हो जाये लेकिन मैं कहता हूँ कि जो अंधेरा रोशनी को भी मात दे दे वही 'असलियत' का सबेरा है।" उनके इस कथन की उज्जवलता तब प्रगट हो पाती है जब मिलन की पीड़ा (रूपी दु:ख) अथवा तड़प को वे अभ्यासी में उतार लाते हैं। यही साँचा सुख है, यही सुख शाश्वत् होता है और बेनक़ाब होता है। जो अन्तिम सत्य के गौरव को भी हमारे में उतार दे उस दु:ख (तड़प) का गौरव स्वयं में गौरवान्वित हो उठता है इसीलिए मैं कहती हूँ कि दुनिया के अँधेरे से उठकर आफ़ताबे-मारिफ़त (ईश्वरीय-ज्ञान के सूर्य) की ओर निहारो।

'हालते-कुल' क्या होती है? बताने के लिए ही श्री बाबूजी महाराज के पत्र का मुझे स्मरण आया, लिखा था कि 'बिटिया, सब कुछ होने पर भी 'हालते-कुल' का मुझे इंतजार रहता है'। 'हालते कुल' का अर्थ क्या है एवं दशा क्या है? यह स्पष्ट करने के लिए ही आज यह लेखिनी उनके चरणों में झुकी हुई उनसे ही उनके कथन

का स्पष्टीकरण माँग रही है। तो देखिये कि लेखिनी क्या लिख रही है? यह मानों उनकी ही बताई गई बात हमें बता रही है कि 'कुछ' का अपना कोई मूल्य नहीं है क्योंकि यदि कुछ में कुछ जोड़ा जायेगा तो योग होकर भी कोई दूसरी चीज़ नहीं हो जायेगी कुछ, तो कुछ ही रह जायेगा। दूसरी ओर यदि 'कुछ' में से 'कुछ' घटाया जाये तो घट कर जो बचेगा वह कुछ ही होगा। लेकिन जब कुछ में,सब कुछ (फ़ना) लय हो जाता है तो फिर वह कुल हो जायेगा अर्थात् सारी श्रेष्ठ दशायें भी लय हो जाने पर ही बाबूजी का कथन स्पष्ट हो जाता है, अर्थात् तब हालते कुल अर्थात् हालतों की वज़ह (डिवाइन) का ही साम्राज्य समक्ष में व्याप्त होता है। इतना ही नहीं आगे और बढ़िये तो ऐसा लगता है कि 'हालते-कुल' की दशा को भी निचोड़ कर अर्थात् इस श्रेष्ठ दशा को भी जब मेरे बाबूजी ने स्वयं में लय कर लिया तब जो दशा मेरे समक्ष में व्याप्त थी वह अद्‌भुत थी। अभी इस पाई हुई दशा के विषय में अपने गीत की एक ही लाइन गुनगुनाती हूँ कि:-

देख रही वैभव आदि-शक्ति की हवेली भी,
स्वजन से द्वारे-सात, लागे थी नवेली सी॥
मात उज्जवलता को भी दे रही अंधेरे से रे॥

अब आप ही बतायें कि आपके प्रश्न का उत्तर भला मैं कैसे दे सकूंगी कि कौन है इन अनन्य अनुभूतियों का दिव्य श्रोत। अभ्यास काल में साधना में प्राप्त की हुई अलौकिक आध्यात्मिक-गतियों के अनुभवों को तो हृदय सहेजता रहा और लेखिनी को पकड़ाता रहा उन्हें सँभालकर रखने के लिए: पुन: साधना-विहीन (साधना से परे अर्थात् ऊपर उठ जाने पर) हो जाने पर जब कोई साधन न रहा लेखन के लिए, तब अनन्य अनुभूतियों के दिव्य-श्रोत से स्वत: ही समक्ष में बिखर उठे यह दैविक-हीरे-मोती जो आज आपके समक्ष हैं। अब मुझे यह आशा अवश्य है पुस्तक के पाठकगणों से, कि अनुभूतियों के इस दिव्य-श्रोत में समाई हुई उस दिव्य छवि की खोज, आप अवश्य ही करेंगे। जानते हैं क्यों? क्योंकि श्री बाबूजी का यह कथन कि ''यदि एक बुझे हुये कोयले(हृदय) को जलते हुए कोयले अर्थात् दिव्य-छवि का योग देते रहेंगे तो वह बुझा हुआ कोयला (हृदय) एक दिन अवश्य ही दैविक-छवि की दिव्य-ज्योति से जगमगा उठेगा'', और उनका यह सत्य-कथन, प्रैक्टिकल अर्थात् अभ्यास द्वारा प्रत्यक्ष हो जाता है।

अब कौन कहे और कैसे कहे कि 'ये छवि कौन है?' पहले तो उन्होंने (बाबूजी ने) आध्यात्मिक-अनन्य-गतियों के परमानन्द में लय करते हुए मुझे

परम-साक्षात्कार प्रदान किया फिर ईश्वरीय-केन्द्र में अर्थात् ईश्वर के घर (ईश्वरीय शक्ति) में मुझे प्रवेश भी दिया और उस परम-शक्ति के समक्ष मुझे खड़ा कर दिया। बस उस क्षण से ही मेरे लिये ईश्वर नाम का शब्द ही मानों 'उसमें' ही विलीन होकर, खुद को ही खो बैठा था। किन्तु आज इस पुस्तक में उपर्युक्त दशा को लिखते समय जो ईश्वरीय-गति मेरे समक्ष में व्याप्त है, उससे मैं एक दैविक-भेद और समझ पाई हूँ। किन्तु इस परम-सत्य को आपके समक्ष रखने के लिए मुझे स्वयं का ही पता टटोलना पड़ रहा है, और वाणी की मुखरता जो स्वयं खुद को खो बैठी है, भला वह आज मुझे क्या और कैसे बता सकती है कि उसने क्या देखा है। आज मेरे बाबूजी महाराज इस परम सत्य के रहस्य को स्पष्ट करना चाहते हैं तो उनकी कृपा ही लेखिनी को जो कुछ बतायेगी वही आप पढ़ेंगे। आज मैं स्वयं ही अभिभूत् होकर यह सत्य आपके समक्ष रख रही हूँ कि वास्तव में अपने श्री बाबूजी महाराज की दिव्य-नजरों से ही मैंने उस परम-साक्षात्कार को मात्र छुआ भर था। आज यह भेद मेरी समझ में आ गया है कि भला उस नग्न परम ईश्वरीय-शक्ति को देख पाने की क्षमता ही किसमें हो सकती है। अन्तिम-सत्य ने अपने ही हीरा-लाल (श्री बाबूजी महाराज) को धरा पर उतार कर जो समस्त को धन्य किया है, उसके श्रेष्ठ एवं अनुपम प्यार को, धरा तो क्या युग कभी भुला नहीं पायेगा। इतना ही नहीं मुझे (मानव को) सत्य पद पर प्रतिष्ठित करके अन्तिम सत्य (भूमा) के क्षेत्र में भी प्रवेश दिया। अपने दिव्य-संकल्प की गोद में लेकर आदि-केन्द्र के दिव्य-क्षेत्र सेंट्रल-रीजन में पैराते हुए मुझे भूमा के दैविक-द्वार पर महापार्षद के रूप में खड़ा कर दिया। किन्तु आज इस परम-दशा का भी जो भेद मेरे समक्ष में है उसे लिख पाने में यह लेखिनी मानों बार-बार अपना होश खो बैठती है। श्री बाबूजी महाराज द्वारा लिखित सात रिंग्स के बारे में, एवं वहां का समां एवं सदाचार, मैंने अपनी पुस्तक में तथा गीतों में भी भूमा के 'सप्त-द्वार' करके लिखा है। जानना चाहेंगे कि 'अन्तिम सत्य' (भूमा) के सप्त द्वार का दैविक रहस्य क्या है? हाँ, जो मेरे समक्ष में व्याप्त है उसे लिखूंगी अवश्य। आज मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि ये सप्त-द्वार ही नहीं बल्कि ये सप्त-पारदर्शी हैं जिनसे छन कर आती हुई भूमा (अल्टीमेट) की छवि हमें जहाँ का तहाँ खड़ा कर देती है। आज मुझे ऐसा लग रहा है कि यह दिव्य-नज़ारा मानों मैंने स्वप्न की ओढ़नी में से अथवा अन्तिम सत्य के परम-सौंदर्य की चरम-सीमा की पारदर्शी ओढ़नी में से ही निहारा है। फिर कहाँ छिप गई थी मेरे बाबूजी की दिव्य-छवि एवं

उनकी उपस्थिति का आभास जिसके लिए आज भी कभी-कभी मेरी नज़र बाट जोहती सी मालूम पड़ती है।

आज अतीत की यह अनुपम एवं दिव्य दशायें मानों मेरे समक्ष श्री बाबूजी महाराज की दिव्य-विभूति (डिवाइन पर्सनैलिटी) की मौजूदगी को ही प्रत्यक्ष कर पाने का सरस एवं सहज प्रयास कर रही हैं। अभी तक मैं इतना ही जान पाई हूं कि उन्होंने परम-सत्य की इस दिव्य-दशा का एवं अपनी ही दिव्य-छवि का मात्र आभास ही दर्शाया है, फिर कौन होश, होश में आकर आपको यह बता पायेगा कि 'कौन हैं ये'? एवं कैसी है उनकी दिव्य-छवि? बेचारी लेखिनी उनका ही पावन स्पर्श पाकर निहाल हुई इतना ही लिख सकी है कि:-

'कौन किससे पूछे हस्ती कैसी है ये आई रे।'

अब आप समझ तो गये होंगे कि इन अनन्य दिव्य-गतियों का दिव्य-श्रोत कौन है?

अब यह लेखिनी उठ रही है अपने सौभाग्य की चरम-सीमा छू पाने के लिए। कदाचित् अंर्तनैनों में उनकी ही प्रदान की हुई दिव्य-ज्योति के सहारे मैं जो देख रही हूँ मात्र उसे ही अपनी पुस्तक में अंकित करपाने का प्रयत्न कर रही हूँ। यह बात तो सर्वमान्य ही होगी कि आध्यात्मिक विषय का लेखन जो, अनुभूति से भी नितान्त श्रेष्ठ है, वह दैविक चेतना द्वारा ही होता है। मैं तो उनकी अपार-कृपा में डूबी हुई दृष्टा-मात्र ही हूं। अब अनुभूतियों के दिव्य-श्रोत से दैविक इन्स्ट्रूमेन्ट का विषय ही बोलने जा रहा है।

इस विषय में सर्वप्रथम यह लिखना नितान्त आवश्यक है कि सहज-मार्ग साधना में कौन से दैविक-इन्सट्रूमेन्ट हमारे में प्रकाशित हो उठते हैं जिनके सहारे श्रेष्ठ अनुभूतियों के साथ, दैविक विषय भी हमारे समक्ष मुखर हो उठते हैं। इसका प्रथम स्तर है अचेतन-मन, अर्थात सब-कान्शस-माइंड का। वास्तव में यह ईश्वरीय-प्रिन्टर के सदृश मानव में कार्य करता है। अच्छे-बुरे विचारों एवं कार्यों की छाप यहीं पड़ती है जिसके द्वारा संस्कारों का निर्माण होता है। किन्तु यही (अचेतन-मन) सहज-मार्ग साधना द्वारा जब ध्यान में डूबे रहने के अभ्यास से साफ़ हो जाता है तो फिर हमें साधना के अनुभव का भी आनन्द प्रदान करता है। एक दिन जब ऐसा सौभाग्य हमारे बाबूजी ने मुझे प्रदान किया था कि ईश्वरीय-ध्यान में डूबे रहने से जब इस प्रिन्टर पर छपे सारे चित्र मिट गये तो फिर संस्कारों के बंधन से मैं मुक्त हो गई थी, ऐसा मेरे श्री बाबूजी महाराज ने मुझे लिखा था। एक बात यह भी लिखना बहुत जरूरी है कि इस दशा की प्राप्ति के बाद, जब हमसे

प्रश्न पूछे जाते हैं तो ध्यान में डूबा हुआ हमारा अनुभव ही उत्तर देता है। अचेतन-मन के शुद्ध होने पर हमारी यह दशा सहज ही हो जाती है। श्री बाबूजी ने जब ईश्वरीय-दिव्य-देश में मुझे कदम रखने का सौभाग्य प्रदान किया था तब वहां की परमानन्द मयी दशा तो उन्होंने मुझमें उतारी ही, साथ में उनकी कृपा से उन्होंने अवचेतन-मन (सुपर कान्शस माइंड) से भी मेरा सम्बन्ध कर दिया था। कहते हैं ईश्वर के माइन्ड नहीं होता है। कदाचित् मेरी भी हालत वैसी ही हो गई थी। क्योंकि मैंने पाया कि तब जो भी कोई मुझसे प्रश्न पूछता था तो लगता था कि प्रश्न सीधा किसी शक्ति से टकराता था और उत्तर मेरा मुख बोलता था। सुपर कान्शस-माइन्ड के स्थान की प्राप्ति के बाद हमारी ऐसी ही दशा स्वत: हो जाती है।

आज मेरी लेखिनी का हौंसला तो देखिये कि अपने प्रियतम, श्री बाबूजी, की विराट् एवं दैविक छवि में लय हुई यह, दैविक इन्स्ट्रूमेन्ट के तीसरे स्तर (डिवाइन-कान्शसनेस) दिव्य-चेतना के बारे में अपना मुख खोलना चाह रही है। वास्तव में तब चेतना का सीधा सम्बन्ध तो भूमा के केन्द्र से होता है किन्तु मैंने अब यह भी पाया है कि यहाँ इसके स्वत: ही दो स्तर हो जाते हैं। प्रथम स्तर भूमा के गौरव-गरिमा के देश अर्थात् सेंट्रल-रीजन से योग पाये रहता है, जहाँ पर ऐसे दैविक प्रश्न भी स्वत: ही उपजते हैं जिनका सीधा सम्बन्ध अनन्त की दशा से होता है और उत्तर भी हर दैविक-दशा के ऐसे आते हैं जिनके बारे में मैं क्या, कोई कभी सोच भी नहीं सकता है क्योंकि यहां पर पैराव ही पैराव (स्विमिंग) की दशा है, इसलिये मालिक के संकल्प में प्रवेश पाये बिना वहां की हालत जानकर लिख पाना नितान्त असंभव है। किन्तु दैविक चेतना के दूसरे स्तर का सीधा सम्बन्ध,भूमा के मुख्य केन्द्र बिन्दु के क्षेत्र से होता है। इस परम गति को प्राप्त करने के बाद मैंने पाया कि मेरे बाबूजी ने भूमा के गिर्द के सात-सर्किल में प्रवेश देकर इस अन्तिम क्षेत्र के भेद को भी मेरे लिए उजागर कर दिया है। यही कारण है कि आज जब वे इन तीनों अवस्थाओं का ब्यौरा लिखाना चाहते हैं तो इनकी हालतों को भी मेरे समक्ष में फैला दिया है ताकि सब ज्यों का त्यों ही समस्त के लिए स्पष्ट हो सके और मेरी लेखिनी का नाम सुधन्य हो सके। भूमा के मुख्य केन्द्र के क्षेत्र में प्रवेश पा जाने पर अब मैं देख रही हूं कि मुझे प्रश्न भी यहीं से, और उनके उत्तर भी यहीं से प्राप्त होते हैं लेखन के लिए। मुझे लगता है कि मानों आज डिवाइन (भूमा) अपना रहस्य स्वयं स्पष्ट करना चाहता है इसीलिए इससे सम्बन्धित प्रश्न भी यहां से ही और स्वत: ही उतरते हैं और प्रश्न के उत्तर भी यहीं से उतरते हैं। लेखिनी तो मात्र लिख रही है। ऐसा कभी हुआ नहीं कि भूमा अपनी असलियत (रियेल्टी) को स्वयं ही समस्त के लिए स्पष्ट करना चाहे।

AURA - SUPER CONCIOUS MIND का स्थान है और INTERCOMMUNICATION की STATE है

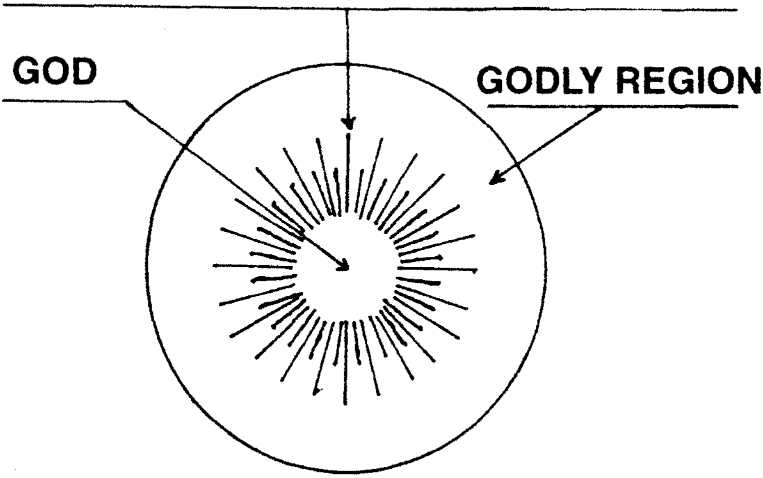

जब व्यक्ति GOODLY REGION में पहुँच जाता है, तब, जो भी प्रश्न उससे पूछा जायेगा, वह SUPER CONCIOUS से टकराता है और उत्तर भी वहीं से आता है, क्योंकि GOD को MIND नहीं होता इसलिये वह कार्य SUPER CONCIOUS MIND से होता है।

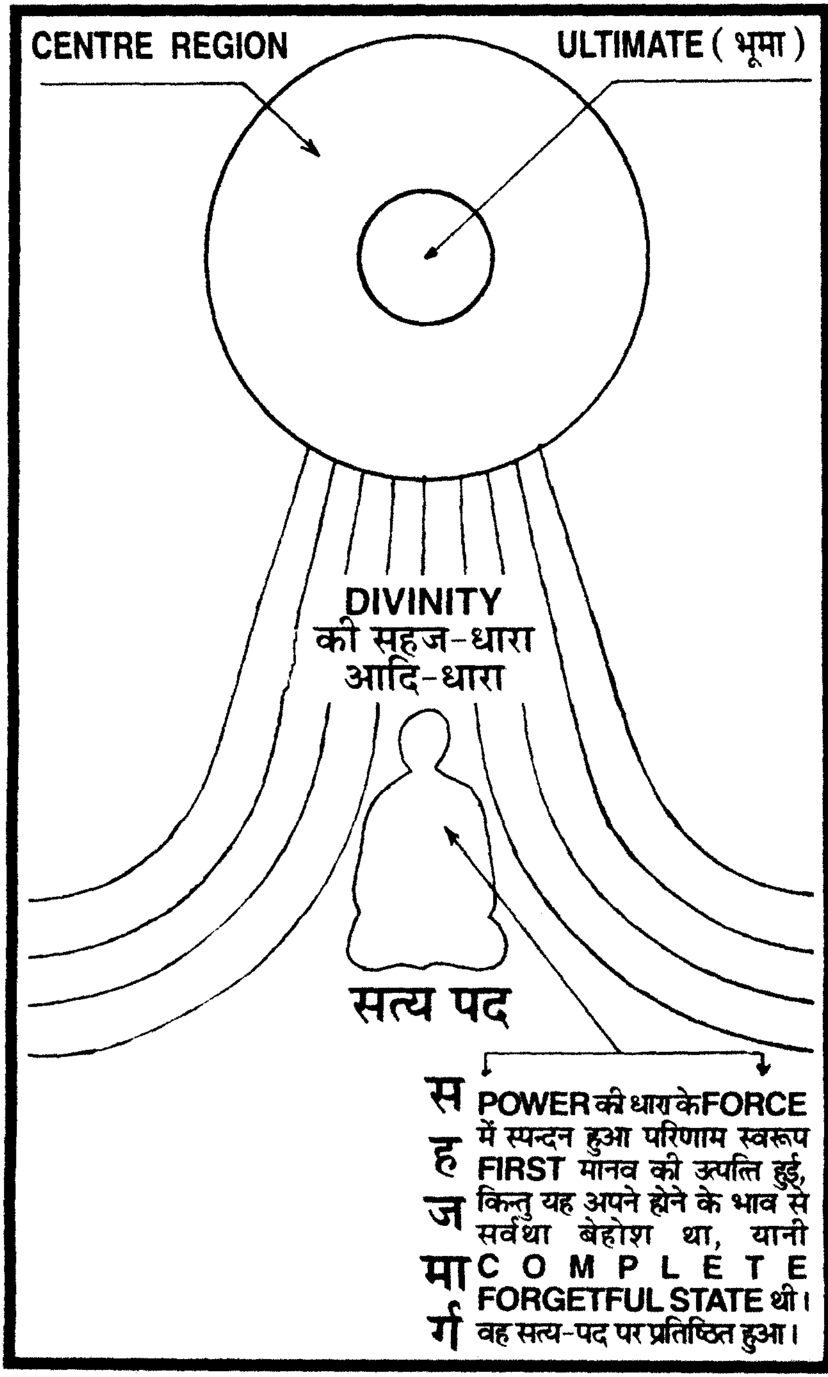
CENTRE REGION
ULTIMATE (भूमा)
DIVINITY
की सहज-धारा
आदि-धारा
सत्य पद
स
ह
ज
मा
र्ग
POWER की धारा के FORCE
में स्पन्दन हुआ परिणाम स्वरूप
FIRST मानव की उत्पत्ति हुई,
किन्तु यह अपने होने के भाव से
सर्वथा बेहोश था, यानी
C O M P L E T E
FORGETFUL STATE थी।
वह सत्य-पद पर प्रतिष्ठित हुआ।

जानते हैं ऐसा क्यों है? क्योंकि कोई भी दिव्य विभूति, ऐसी कभी पृथ्वी पर उतरी ही नहीं जो अपनी प्राणाहुति-शक्ति का अभ्यासी के हृदय में प्रवाह देकर उसे साक्षात्कार के योग्य बना कर, ईश्वर-प्राप्ति के गौरव से गौरवान्वित कर सके। फिर इतना ही नहीं भूमा (आदि शक्ति) के वैभव के केन्द्र-सेंट्रल-रीजन में प्रवेश देकर, भूमा के मुख्य केन्द्र की डयोढ़ी का चुम्बन भी प्रदान कर सके। इतना ही नहीं भूमा के गिर्द सातों वृत्तों का भी अनावरण करके, महा-पार्षद की गति में भी लय करते हुये, हमें आदि के अनन्त क्षेत्र में रहनी भी प्रदान कर दे। बस 'कौन हैं ये' प्रश्न की सादगी का पर्दा तो अब उठ ही गया है। दर्शन कर पाना आपकी भक्ति में डूबे हुये इस अंर्तमन की पुकार है।

अब मानव-उत्पत्ति की परिभाषा भी अपने रहस्य को खोलना चाहती है तो सुनिये, मुख्य केन्द्र (भूमा) से क्षोभ के परिणाम स्वरूप आदि-शक्ति से धारा का प्रवाह शुरू हो गया। केन्द्र से पृथक होकर इस शक्ति ने जहाँ अपना ठहराव पाया, वह ईश्वरीय-केन्द्र कहलाया। किन्तु अभी क्षोभ की आदि-शक्ति का रचना के हेतु क्रियाशील होना शेष था। इसलिए ईश्वरीय केन्द्र की हलचल के रुख ने रचनात्मक शक्ति का जो केन्द्र बनाया वह हिरण्यगर्भ कहलाया। यही कारण है कि जब मेरे बाबूजी ने मुझे हिरण्यगर्भ में प्रवेश देकर वहाँ की सैर कराई तो मैंने उन्हें लिखा था कि "मुझे ऐसा लगता है कि मानों सारा संसार मैंने ही बनाया है और हजारों सूर्य-चन्द्र सब मानों मेरी शक्ति से ही चमकते हैं आदि।" तभी उत्तर में श्री बाबूजी ने मुझे लिखा था कि "यह तो मेरे समर्थ सद्गुरू की शक्ति का कमाल है जिन्होंने अभ्यासी की उन्नति हेतु आज असंभव को भी संभव बना दिया है।" परन्तु आदि-मानव की उत्पत्ति तो बताती है कि आदि-क्षोभ के कारण स्वरूप उत्पन्न शक्ति की सहज-धारा ने जहां अपना ठहराव बनाया वह ईश्वरीय-शक्ति का केन्द्र कहलाया ही किन्तु शक्ति की सहज-धारा में ठहराव आने के कारण जो सहज-स्पन्दन आया इसके परिणाम स्वरूप प्रथम मानव की उत्पत्ति हुई। यही कारण है कि मानव को रचनात्मक शक्ति की श्रेष्ठतम-कृति माना गया है। मानव के बैठने के जर्क (दबाव) से एक स्पन्दन और बढ़ा और परिणाम स्वरूप दूसरे मानव का सृजन हुआ। अब प्रकृति की शक्ति में खलबली मच गई और क्रियान्वित-शक्ति ने रचना के फैलाव का आरम्भ कर दिया। मानव का फैलाव सहज ही प्रकृति के क्षेत्र में प्रवेश पा गया और उसने अपने होने के भाव को पहचान लिया। दुई के भाव को करवट लेते ही 'अहं' का जन्मबोध हुआ और तबसे मानव का 'अहं' ही उसके ठहरने या टिकने का आधार बन गया। यही कारण है कि ईश्वरीय-ध्यान में लय रहने पर भक्ति रस में डूबे हुये हमारी दशा जब हिरण्यगर्भ को पार करके श्रेष्ठ

स्तर पा जाती है तब ही हमें ईश्वरीय देश में प्रवेश मिलता है। ईश्वरीय देश में प्रवेश मिलते ही लगता है कि ईश्वरीय शक्ति का सीधा सम्बन्ध हमें अपनी ओर खींच रहा है। तभी यह कथन भी हमें सिद्ध हुआ मिलता है कि "हम ईश्वर की ओर यदि दो क़दम बढ़ते हैं तो वह हमारी ओर दस क़दम बढ़ता है।" तभी एक दिन श्री बाबूजी यह शुभ घड़ी हमारे लिये अवश्य ले आते हैं कि मात्र साक्षात्कार ही नहीं बल्कि ईश्वरीय-शक्ति के महत्-केन्द्र में डुबकी देकर हमें मानव के सत्य-पद पर प्रतिष्ठित कर देते हैं, और हम पार्षद (प्रहरी) के भाव की दशा में डूबे हुये भूमा के वैभव के केन्द्र सेंट्रल-रीजन में प्रवेश पाने की प्रतीक्षा में रत हो जाते हैं। यहां से ही हमें मानव की आदि-सहज-गति की वह दशा प्राप्त हो जाती है जहाँ उसके अस्तित्व का स्थान या आधार 'अहं' नहीं होता है बल्कि स्वयं भूमा के देश के प्रहरी के सदृश, पार्षद की परम्-गति का ही आधार होता है। यहां पूर्णतय: 'मूल' की हालत ही फैली है अर्थात् कम्प्लीट फॉरगेट फुल की ही स्टेट है। समय की गति ने ही मानव के समक्ष यह विचार उठा दिया था कि 'मैं कौन हूँ?" इस विचार ने ही मानव में सहज स्पन्दन सा कार्य किया, यहाँ से ही विचार की उत्पत्ति हुई। विचार की उत्पत्ति होते ही मानव-अस्तित्व क्रमश: अपनी वास्तविकता से अलग हो गया और उसमें अप्राकृतिक भावना (अन-नेचुरल-नेस) का प्रवेश स्वत: ही होने लग गया। फिर क्या था, उसके होने के भाव एवं विचार अथवा होश के ठहरने के लिए प्रकृति की शक्ति ने इसे माइन्ड रूपी घर दे दिया। अप्राकृतिकता (अननेचुरेलिटी) ने मानव होश को अहं से जोड़ दिया और वह अपने क़याम (ठहरने के स्थान को) अर्थात् शरीर को ही घर मानने लग गया एवं उसका असल-वजूद उसकी आँखों से ओझल हो गया। नतीजा यह हुआ कि अहं से जुड़े वजूद (शरीर) को ही 'यह मैं हूं' करके मानने लगा। इतना ही नहीं अप्राकृतिक भाव के प्रवेश हो जाने के कारण उसे ऐसा एहसास ही रहने लगा कि वह 'शरीर' है। देखिये क़यामत कैसा गजब ढहाती है कि सहज धारा एवं वास्तविक सत्य पद से पृथक हो जाने के कारण, प्रकृति की धारा ने माइन्ड में विचारों के फैलाव को सहलाना शुरू कर दिया। क्रमश: विचारों के फैलाव का कारण ही ईश्वरीय-विचार से दूरी बढ़ती जाने का कारण बन गया। यह कारण ज्यों ज्यों अपने आदि से दूर होता गया ठोस पड़ता गया और एक दिन यह ठोस कारण मानव में कारण-शरीर के रूप में स्थापित हो गया। इस ठोस कारण का साया ही सूक्ष्म शरीर के रूप में स्थापित हुआ। पुन: जब अहं के कारण सूक्ष्म शरीर संस्कारों से ढक जाता है तभी मानव को अन्नमयी कोष अर्थात् भौतिक रूप को धारण करना पड़ता है। अब आप ही बताइये कि मानव के अहं के प्रथम विचार अथवा चेतना ने इसे रियेलिटी (वास्तविकता)

से कितनी दूर फेंक दिया। यद्यपि मानव की वास्तविकता-सत्य पद ही थी इसीलिए, किसी न किसी प्रकार इसके अन्तर्मन में ईश्वरीय-शक्ति मौजूद रही और प्रकाश भी विद्यमान रहा। यही कारण है कि मानव की वास्तविकता (रियेलिटी) बराबर हमारे अंतर को कुरेद कर सजग करती रहती है कि 'वह' (ईश्वर) है। श्री बाबूजी ने यह कहकर समस्त को कितना आश्वासन दिया है कि 'वतन की वापसी के लिए हृदय में ईश्वर की मौजूदगी की याद एवं एहसास के भीगेपन की ही ज़रूरत है। आज मैंने इस दशा का भी रहस्य पा लिया है कि ईश्वरीय-देश में प्रवेश पाकर फिर कभी भी 'भूल' (फॅारगेटफुलनेस) की अवस्था नहीं आती है क्योंकि याद ईश्वर से योग पा जाती है। इतना ही नहीं, ''या में द्वै न समाय'' की दैविक दशा में ही हम लय रहने लगते हैं। फिर तो यदि कोई भूल की दशा का ज़िक्र भी करे तो लगता है कि जाने किसके बारे में बोल रहा है ऐसी निर्गुनियां ही अवस्था हमें प्राप्त हो जाती है।

अब दिव्य-सहज दशा की वास्तविकता भी अपने बारे में क्या बोलने जा रही है इसे सुनने के लिए आपको सजगता लानी होगी क्योंकि बहिन आवाज दे और भाई के कान सजग न हो उठें, यह असंभव बात है। श्री बाबूजी महाराज ने मुझे बार-बार लिखा है कि ''दशा जब अनुभव से हल्की हो जाती है तो कुछ ऐसी ईश्वरीय व्यवस्था स्वत: एवं सहज ही होती चलती है कि अब हम ध्यान में कैसे रहें। इसीलिए ध्यान में अब दशा का एहसास तो नहीं होता है बल्कि हमें ऐसा लगता है कि मानों दशा अपने बारे में खुद बता रही है''। बस यही चीज़ हमारे समक्ष बाबूजी के इस कथन को स्पष्ट कर देती है कि जब दशा अनुभव से हल्की हो जाती है तो ऐसी व्यवस्था स्वत: ही हो जाती है कि हमारी आंतरिक रहनी में मानों दैविक गति ही बोलती है। किन्तु यह भी दैविक विभूति, श्री बाबूजी का रहस्य है कि इस व्यवस्था का अंदाज़ हमें विराट माइन्ड से ही मिलता जाता है।

इतना ही नहीं मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि अब तो मेरे बाबूजी सहज-मार्ग के प्रशिक्षण में चार-चाँद लगाने जा रहे हैं जो मेरे समक्ष आज भूमा तक पहुँचाने की क्षमता का भेद भी स्पष्ट करने का हौंसला दे रहे हैं। क्योंकि जिस अनन्त देश के पैराव का अन्दाज़ उनकी कृपा के बिना पाना असंभव है उसको समक्ष में फैलाकर मानों अपनी इस नन्हीं बालिका (कस्तूरी) में ऐसा शिक्षण भर रहे हैं एवं मुझमें ऐसी दृढ़ता पैदा कर रहे हैं कि मैं अपने अभ्यासी बन्धुओं में उनकी (श्री बाबूजी) की समूची दिव्य देन को उतार सकने में समर्थ हो सकूँ।

एक और रहस्य वे मेरे समक्ष उजागर कर रहे हैं जिसे आपके समक्ष मुझे

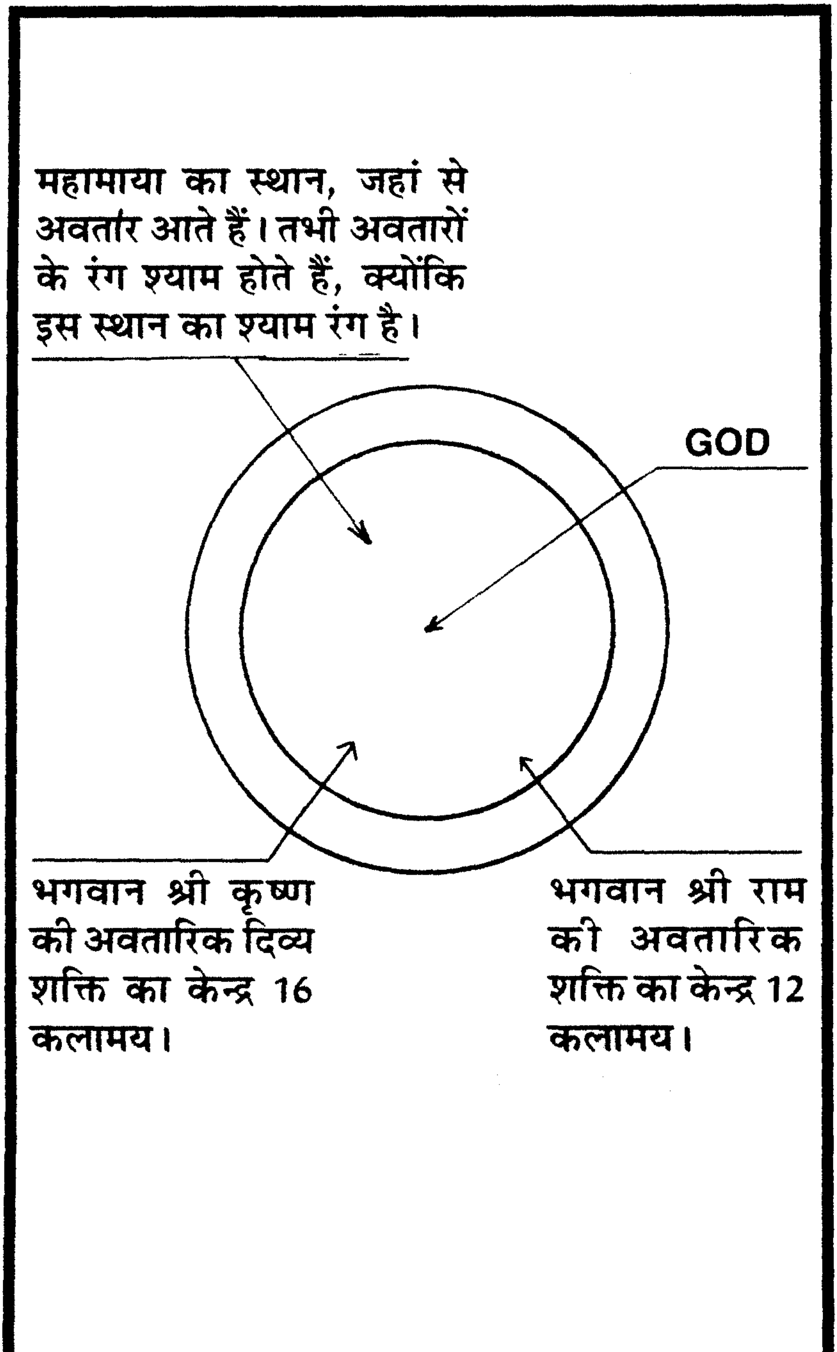
महामाया का स्थान, जहां से अवतार आते हैं। तभी अवतारों के रंग श्याम होते हैं, क्योंकि इस स्थान का श्याम रंग है।
GOD
भगवान श्री कृष्ण की अवतारिक दिव्य शक्ति का केन्द्र 16 कलामय।
भगवान श्री राम की अवतारिक शक्ति का केन्द्र 12 कलामय।

रखना ही है। वह यह कि आध्यात्मिक श्रेष्ठ गतियों से निखारते हुए जीवन में जीने के लिए, जीवनी-शक्ति का प्रवाह भी वे अपनी ही कृपा एवं दैविक-शक्ति से प्रदान करते हैं। जब दिव्य- ईश्वरीय देश की दशा में मैंने उन्हें लिखा था कि "अब वास्तव में मैं नहीं बढ़ रही हूँ बल्कि लगता है कि कोई शक्ति अहर्निश मुझे अपनी ओर खींच रही है और हर जगह मुझे ईश्वरीय शक्ति ही फैली हुई लगती है।" श्री बाबूजी का उत्तर था कि "यह ईश्वरीय शक्ति का क्षेत्र या स्थान है जो तुम्हें मुबारक हो"। यह पढ़कर उस समय मैं खुश होकर भी खुश नहीं हो पाई थी। जानते हैं क्यों? क्योंकि खुशी से उस दिव्य-दशा की सतत् शान्ति, एवं शाश्वत्-आनन्द बाधित (डिस्टर्ब) हो जाने का डर था। दूसरे वहां की गरिमा में किसी दूसरी खुशी की गुज़र ही कैसे होती। हमें तो वहीं की निराली एवं निर्गुण अवस्था में लय हो जाना होता है। एक कृपा यह भी तो देखिये मेरे बाबूजी महाराज की, कि मुझे तो इतना भी बोझ वहन करने न दिया कि मैं खुद की खुशी को उस दिव्य माहौल से अलग कर सकूँ। इसलिए पहले की इस दशा को जो वे अब समक्ष में रख रहे हैं वह बता रही है कि उन्होंने मेरे अस्तित्व को स्वयं में ही विलीन कर लिया था। आज मैं उनकी ही कृपा से समक्ष में यह देख कर गद्गद् हो रही हूँ कि वास्तव में श्री बाबूजी कौन हैं? अपनी दिव्य श्रेष्ठता का यह रहस्य भी कदाचित् वे ही मुझ पर स्पष्ट करना चाह रहे हैं तभी तो लेखिनी में उनकी परम शक्ति का दम (शक्ति) है। उन्होंने मेरे अस्तित्व को स्वयं में इसलिये मिला लिया था कि वह पृथक न दिखाई पड़े जिससे वहां की दैविक गरिमा कि "या में द्वै न समाय" भी बनी रहे, और उनका दैविक-संकल्प जो मानव को भूमा के केन्द्र तक पहुँचाना था, वह भी पूरा हो सके। उनका कथन कि 'साक्षात्कार ही सब कुछ नहीं है'। यदि हिम्मत है तो भूमा के देश (सेंट्रल-रीजन) का दिव्य नज़ारा देखो। आज इस दशा के दर्शन में मैंने श्री बाबूजी का यह कथन भी स्पष्ट पाया है कि "अवतारों के धरा पर अवतरित होने की दिव्य शक्ति का स्थान महामाया का स्थान है।" जब मैंने उन्हें लिखा था कि अब "हर जगह लगता है कि राम ही रमा हुआ है।" उस दशा का भेद मैंने अब समझ पाया है कि इसी महामाया स्थान की शक्ति से राम का अवतार हुआ था। जब मैंने उन्हें लिखा था कि अब तो लगता है कि "दिव्य शक्ति मुझे अपनी ओर खींच रही है।" उसका अर्थ प्रत्यक्ष में अब मैंने पाया है कि कृष्णावतार भी यहीं से अर्थात् महामाया के स्थान से ही धरा पर अवतरित हुआ था। अब मुझे यह भेद भी समक्ष में स्पष्ट हो गया है कि रामावतार बारह कला

का, और कृष्णावतार सोलह कला का कैसे था? श्री बाबूजी के इस कथन का रहस्य भी समक्ष में आ गया है जिसे आपके लिए भी मैं स्पष्ट कर रही हूँ कि अवतार का रंग दैविक-साँवला ही क्यों होता है? क्योंकि महामाया की परम-शक्ति के स्थान में ऐसा ही दैविक एवं अनुपम साँवला प्रकाश छिटका हुआ है। एक बात यह भी कह दूँ कि संसार में कार्य की आवश्यकतानुसार ही अवतार में शक्ति की कला का अंकन होता है। यही कारण है श्री राम, बारह कला और श्री कृष्ण, सोलह कला के अवतार थे।

दैविक सहज-मार्ग साधना द्वारा अहं भाव का घुल जाना प्राणिमात्र के हित, संभव हो गया है। इसीलिए मेरे बाबूजी का यह कथन भी चरितार्थ हो गया है, कि "प्राणिमात्र के लिए ईश्वर प्राप्ति का अवसर लाने के लिए ही दिव्य विभूति आज सहज ही तत्पर है।" भूमा तक ले जाने का लक्ष्य मानव को देना, फिर ईश्वरीय-धारा का हृदय में प्रवाह देकर, इसे श्रेष्ठ गतियों के अनमोल रत्नों से सजाने वाली इस दिव्य-विभूति के अवतरण के लेखन में आध्यात्मिक ग्रन्थ ही क्या, बल्कि समय भी मौन है। कारण तो लिखना ही पड़ेगा कि मानव का प्रथम होश या अपने होने के भाव की चेतना का अहं से लिपटा होने पर भी ईश्वर के विचार ने उसे नहीं छोड़ा। दैविक प्यार की इस अनुपम गति ने पुन: पुन: हमें दिव्य चेतना भी देनी चाही, यह सत्य भी प्रत्यक्ष है क्योंकि हम कितना ही उसे भूले रहें किन्तु पीड़ा एवं विपत्ति के समय मुख से स्वत: ही 'हाय राम' निकलता है और मेरा अनुभव है कि 'हाय राम' कहते ही पीड़ा का एहसास अवश्य ही कुछ हल्का पड़ जाता है।

एक बात यह भी लिखना आवश्यक है कि दर्शन की तीन अवस्थाओं के लिये बाबूजी महाराज कैसे हमारी दृष्टि को भी उसके अनुरूप ही बदलते जाते हैं। आध्यात्मिक-क्षेत्र में यात्रा की हर बारीकी को भी मुझमें उतारते समय तो मैं नहीं जान पाई थी किन्तु आज इस पुस्तक में यात्रा के वर्णन में यह एक बात भी कैसे छूट जाती इसीलिये उन्होंने इस तथ्य को भी मेरे लिए प्रत्यक्ष कर दिया है। मैंने पाया है कि अंर्तदृष्टि द्वारा तो आध्यात्मिक-गतियाँ रोशन होती हैं हमारे अनुभव में भर पाने के लिये और फिर परमात्म-दर्शन मिलता है। ईश्वर-दर्शन के समय वे हमें दिव्य-दृष्टि प्रदान करते हैं। किन्तु अद्‌भुत, अनुपम, दिव्य-विभूति अथवा आदि का साक्षात्कार पाते समय मानो आदि-छवि का आईना ही हमारे लिये दिव्य-दृष्टि बनकर समक्ष में व्याप्त हो जाता है। दिव्य साक्षात्कार पाने की गरिमा से हमें गौरवान्वित हमारे बाबूजी महाराज ही करते हैं।

अहं के सोलह सर्किल्स

मैं ऐसा पा रही हूं कि श्री बाबूजी महाराज मुझे हर दैविक गति के विषय का ब्यौरा प्रदान कर रहे हैं। एक दिन बाहर बरामदे में बैठी थी कि अचानक मुझे लगा कि मानों वे अहं के सोलह सर्किल्स के विषय में मेरे समक्ष कुछ उतारना चाहते हैं और ज़रिया भी कैसा लिया कि खुद मेरी अनुभूति ही इसे बोले। अहं के सोलह सर्किल का ज़िक्र उन्होंने अपनी पुस्तक में भी किया है और मुझे आध्यात्मिक-गतियाँ प्रदान करते हुए, मेरे पत्रोत्तर में भी इसका संकेत दिया है किन्तु उसका विषय तो मेरी अनुभूति का उत्तर मात्र ही था। खैर आज मेरी लेखिनी चौकन्नी हो गई है। आज जब इस लेखिनी को उन्होंने लिखने के लिये उठा ही लिया है तो फिर हर आध्यात्मिक विषय एवं अनुपम दशाओं की अनुभूति की गहनता भी स्पष्ट हो ही जायेगी और अहं का भेद भी खुल जायेगा।

अहं का प्रथम सर्किल अपनी स्थिति के भेद को स्पष्ट करता हुआ सर्वप्रथम अपने अर्थ की ही व्याख्या कर रहा है। श्री बाबू जी का कथन कि ''मनुष्य की हस्ती गिलाफ़-दर-गिलाफ़ है'' अर्थात् मानव का वास्तविक अस्तित्व तमाम आवरणों से ढका हुआ है। इनमें मैंने तीन आवरण ही विशेष पाये हैं जिनके अंतर्गत अहं के सोलह वृत्तों का पसारा है। पहला आवरण है 'माईनेस' अर्थात् मैं हूँ का, यह अहं का ठोस भाव है जो भौतिक-शरीर से सम्बन्धित रहता है। दूसरा आवरण है 'आइनेसका, जो अहं का सूक्ष्म भाव है और तीसरा आवरण है यू-नेस का, जो अहं के कारण का द्योतक है, जिसे श्री बाबू जी ने 'वजह' लिखा है। अहं के प्रथम आवरण माईनेस मैं हूँ की हालत में मैंने पाया कि इसमें 'मैं' कहते हुए 'मैं' का संकेत या सम्बन्ध हमारे शरीर से जुड़ा रहता है। मैंने यह किया, वह किया कहते हुए अपने नाम और रूप से ही हमारा सम्बन्ध होता है किन्तु श्री बाबू जी द्वारा बताये ईश्वरीय ध्यान में डूबे रहने के अभ्यास से क्रमशः मैं का सम्बन्ध शरीर से अलग रहना शुरू हो जाता है। श्री बाबूजी महाराज द्वारा हृदय में पाई हुई प्राणाहुति शक्ति का निरन्तर प्रवाह पाते रहने से पावन हुआ हमारा हृदय ईश्वरीय ध्यान में जब स्वतः ही डूबा रहने लगता है तबसे ही हमारे अहं का प्रथम आवरण गलना शुरू हो जाता है। खुद को भूले हुये जब मैंने अपने बाबूजी को यह दशा लिखी कि अब मैं कहते हुए लगता है कि 'मैं' कहीं है जिससे मेरा सम्बन्ध नहीं है। दशा लिखते समय भी कि 'मेरी यह दशा है, तो भी 'मैं' का प्रयोग ऐसा लगता

है कि मानों मैं किसी अन्य की दशा लिख रही हूँ बस यही 'आई-नेस' का आवरण है जो हमें अपने होने के भाव की चेतना देता है। क्रमशः दैविक ध्यान में घुलता हुआ, अहं केभाव का यह दूसरा आवरण भी गलकर साफ़ हो जाता है। अब आती है अहं के तीसरे आवरण की दशा। क्रमशः मालिक के ध्यान में लय हो जाने पर हमें 'तू' ईश्वर शब्द का प्रयोग आने पर इसका सम्बन्ध अपने से ही जुड़ा हुआ लगता है। तुझे ही पाने की लगन मात्र दिव्य (डिवाइन) ईश्वरीय छवि को ही समक्ष में रखती है। यही 'यू नेस' की अर्थात् ईश्वरीय दशा है। यह भी कह सकते हैं कि यह दशा प्रेम की श्रेष्ठ दशा सारूप्यता की ही द्योतक है।

श्री बाबूजी महाराज द्वारा हृदय में पाई हुई प्राणाहुति शक्ति का निरन्तर प्रवाह पाते रहने से पावन हुआ हमारा हृदय ईश्वरीय ध्यान में जब स्वतः ही डूबा रहने लगता है तबसे ही हमारे अहं के वृत्त का बंधन गलना शुरू हो जाता है। खुद को भूली हुई दशा जब मैंने अपने बाबूजी को लिखी तो उन्होंने मुझे लिखा था कि "अपने होने के भाव को भूले रहने की तुम्हारी अवस्था बताती है कि यह आध्यात्मिक दशा में पैठने का आगाज़ (प्रारम्भ) है अर्थात् आध्यात्मिक क्षेत्र में तुमने प्रवेश पा लिया है। आज " समक्ष में मेरे बाबूजी महाराज का यह इशारा है कि यह दशा अहं के प्रथम सर्किल के गल जाने की है।

अब अहं के दूसरे सर्किल के गलने की अवस्था का आरम्भ समक्ष में खुद को स्पष्ट कर रहा है। यहाँ का अनुभव बहुत ही मृदु है। ऐसा लगता है कि अब खुद को भूल जाने की अवस्था सतत् और शाश्वत् होने लगी है। कुछ ऐसी दशा हो जाती है कि लगता है कि मेरे बाबूजी अब हमें हमारे होने की याद समय-समय पर ही देते हैं। मैंने यही पाया है कि हर कार्य करने में हमें अपने होने का भान नितान्त भूला ही रहने लगता है। अब यह आश्चर्य होता है कि मेरी दैनिक चर्या में घर में कभी किसी को भी कोई कमी क्यों नहीं लगी? इसका भेद अब मेरे समक्ष में स्पष्ट हो गया है कि जब हम भक्ति में तन्मय रहने लगते हैं तब फिर समस्त कार्य करते हुए उनका (बाबूजी का) प्यार हमारी परवाह रखने लगता है। मुझे याद है कि यदि किसी बाहर वाले व्यक्ति के सामने मुझे नहीं जाना है तो पैर स्वतः ही घर के भीतर चल देते थे। अब मैं स्पष्ट देख रही हूँ कि अहं के गलाव के दूसरे सर्किल के मध्य की दशा हमें कार्यों के कर्त्तापन के बंधन से अछूता रखने लगती है। इस अवस्था की स्थिर-अवस्था में प्रवेश पाते ही अहं का दूसरा सर्किल भी घुल जाता है। भक्ति की तन्मयता ही हमें यह अलौकिक गति प्रदान करती है कि अब हम माया से परे हो जाते हैं। अब दशा यह व्यक्त करती है कि भूल की अवस्था का प्रारम्भ हमें अहं के घुलन की शुरुआत

की खुशखबरी देती है। श्री बाबूजी के कथनानुसार तभी हमारा क़दम आध्यात्मिक-क्षेत्र में प्रवेश पाता है।

मैं स्पष्ट देख रही हूँ कि अब अहं के तीसरे वृत्त में घुलने की दशा को श्री बाबूजी ने समक्ष में इस तरह रख दिया है ताकि मैं इस दशा को सबके समक्ष ज्यों की त्यों रख सकूं। उनकी यह कृपा कदाचित् समय भी कभी भुला नहीं पायेगा। पैंतालिस-छियालिस वर्षों पहले अभ्यास काल में मुझमें उतारी हुई अनन्य गतियों को समस्त के हित सुलभ करने की उनकी कृपा ही आज मानव के मन-प्राण में थिरक रही है। यद्यपि अभी हम इससे अनजान हैं किन्तु यह समय भी वे ही लायेंगे जबकि धरती के प्राणियों को उनका दैविक आविर्भाव आध्यात्मिकता से सजा देगा। अब तीसरे सर्किल में अविरल भक्ति की दशा भी,अपनी सहज दशा की अनन्यता में डूब जाती है। भक्ति की इस अनन्य-गति में डूबकर हमारे अहं की ईश्वरीय-सामीप्यता में अर्थात् लय-अवस्था शुरू हो जाती है। विचार में, ध्यान में, अन्तर एवं वाह्य में जीवन के परम-लक्ष्य ईश्वर-प्राप्ति की बेचैनी भर जाती है। मैं तो समक्ष में श्री बाबूजी द्वारा फैलाई हुई दशा के बारे में ही लिख रही हूँ क्योंकि उनकी कृपा से, अतीत की अनुभव की हुई दशाओं में, अब मैं स्वयं को जोड़ पाने की क्षमता लय कर बैठी हूँ। या यूँ कहूँ कि स्वत: ही कोई मुझसे, मुझे छीनकर न जाने कहाँ ले गया है, यह मेरे बाबूजी ही जानते हैं। लेखिनी भी उनकी ही और लेखन भी उनका ही है। यह दैविक लेखन ही मानों इस परम-दशा को उतार रहा है। आज मेरे बाबूजी ने यह सत्य भी समक्ष में प्रत्यक्ष कर दिया है कि अब हृदय-मंडल अर्थात् हार्ट-रीजन को पार करने की घड़ी निकट आ गई है। हृदय-मंडल (हार्ट-रीजन) की श्रेष्ठ गति में हमारा स्वरूप भक्ति में डूब कर प्रेम रूपी रत्न प्राप्त कर लेता है। हृदय-चक्र का बन्धन घुल जाने पर अहं का तीसरा वृत्त सदैव के लिए विलीन हो जाता है और सतत् आनन्द से मन-प्राण पुलक उठते हैं।

अरे यह क्या? मैं तो कुछ सोच भी न पाई थी कि मैंने पाया कि अहं का चौथा सर्किल (वृत्त) मानों कुछ अपनी विरह व्यथा से भरी दशा को बोलना चाह रहा है। मैंने जब इस अवस्था में डूबना चाहा तो प्रेम की विभोरावस्था ने मुझे अपने में समेट लिया। आश्चर्य तो यह है कि मैं स्वयं ऐसी विभोर तो हो गई थी परन्तु चेतन-विहीन मैं, गृह कार्यों को भलीभांति करती जा रही थी। समक्ष में फैली अभ्यास काल की यह पावन दशा, जिसकी समझ श्री बाबूजी मुझे आज प्रदान कर रहे हैं यह बताने के लिए, कि अभ्यासी इसे जान सकें कि अहं के इस चौथे वृत्त में पैरने पर हमारी दशा कैसी होती है। आज मेरा यही प्रयास है कि अपने

श्री बाबूजी की यह अपेक्षा जो उन्होंने मुझसे की थी, कि मैं उनके हर दैविक कथन एवं दशाओं को आपके लिये स्पष्ट कर सकूँ, इसीलिए मेरा यह लेखन अहं के सोलह वृत्तों (सर्किल्स) के घुलने (डिज़ोल्व) तक की हर दशा को समस्त के लिए उज्जवल कर सकेगा। आज इन दशाओं को लिखते समय मैं विस्मित हूँ कि मानव का वास्तविक, एवं दैविक-आदि-स्वरूप अहं के इन सोलह सर्किल्स रूपी आवरणों में लिपट कर लुप्तप्राय हो जाता है और इस तरह से कि श्री बाबूजी का यह कथन कि 'मनुष्य की हस्ती गिलाफ़-दर-गिलाफ़ है', अपनी वास्तविकता को प्रगट कर देता है। क्रमश: अहं के गिलाफ़ उतरते जाने पर जो उज्जवलता हम पाते जाते हैं उसके ही आभास के अनुभव द्वारा इसके राज़ को श्री बाबूजी हमारे समक्ष खोलते जाते हैं। आज मुझे लग रहा है कि कदाचित् कबीर की 'झीनी चदरिया' का संकेत अहं के आवरणों के झीने (महीन) होते जाने की ओर ही है। अत: आज यह लिखना भी आवश्यक हो गया है कि यह अहं के वृत्तों का ठोस बंधन, अंतर में ईश्वरीय-सामीप्यता का सतत् सेंक पाने से ही पिघल कर सदैव के लिए ईश्वरत्व की दशा में विलीन हो जाता है। श्री बाबूजी का यह कथन इस बात की सत्यता को प्रत्यक्ष कर रहा है कि प्रेम में डूबे हुए अभ्यासी के लिए, दिव्यता के सागर को भी इसे अपने में समेट लेने के लिए मजबूर होना पड़ता है। लय-अवस्था ही साँचे मोती की भांति अभ्यासी को ईश्वरत्व की हालत से पावन बनाती हुई एक दिन लय-अवस्था को भी ईश्वर में लय कर देती है अर्थात् फ़नायें-फ़ना की दशा हो जाती हैं। श्री बाबूजी ने जब मुझे लिखा था कि "तुम्हारी हालत क्या है? देखकर अपना वह समाँ याद आ जाता है, जब फ़नायें-फ़ना की हालत ने मुझे अपने उर में समेट लिया था।" चौथे वृत्त केआवरण ने पिघलते-पिघलते मुझे बताया कि अब तेरी प्रेम में डूबी हुई विभोरावस्था कभी ऐसा रंग लायेगी जो तुझे बेरंग कर देगी। मैंने देखा कि यह संदेश देते-देते चौथा वृत्त भी पिघल कर विलीन (लय) हो गया है।

अब कैसा अलौकिक तथ्य समक्ष में है कि मैंने पाया है कि अहं के पाँचवें वृत्त में प्रवेश पाते ही मैं यह पा रही हूँ कि यहां की दशा अनुपम है। लगता है कि मैं मानों अपने बाबूजी के समक्ष पुस्तक के सदृश खुल गयी हूँ और मेरा अस्तित्व भी अपने होने के भाव को भूलने लग गया है। मेरा पालन मानो श्री बाबूजी के मन में ही कहीं हो रहा है अर्थात् माइन्ड-रीजन में प्रवेश पाने की मात्र यही विराट्-गति है। अब यह अनुभूति उभर आती है कि अपने होने के भाव की याद का होश मानों कोई हमें दिलाता है, याद रहती नहीं है। अब जब भी जीवित होने का भाव हमें याद करता

है तो वह हमें हमारे शरीर में नहीं, बल्कि हमारी मौजूदगी को अब उनके (बाबूजी) अन्तर में एहसास करता है। यहाँ हमारे फैलाव एक्सपैन्शन या विराट् की गति का क्या कहना है। जब दैविक-चादर की ओट में मैं संसार से परे ही हो गई तो मुझे अपना फैलाव भी विराट् (माइंड-रीजन) में ही अनुभव होता है अर्थात् अब अपने होने का पता हृदय-मंडल के वृत्त को तोड़कर विराट्-मंडल में मिल जाता है। जैसा मैंने लिखा है कि ''मैंने यह किया है'' कहते समय जब तक इसका संकेत शरीर की ओर ही रहता है तब तक यह भौतिकता के साये में रहता है और अहं के ठोस-वृत्त में ही हम क़ैद रहते हैं। किन्तु अहं के चार वृत्तों के गल जाने पर अहं के इस पाँचवें सर्किल में जब हमारा पसारा ईश्वर के विराट् हिरण्यगर्भ में हो जाता है तबसे ही यह दशा हो जाती है कि 'मैं' कहते हुये भी हम 'मैं' से जुड़ नहीं पाते हैं, भूले ही रहते हैं। ऐसी अनुभूति होती है कि 'मै' कहीं अकेला छूट गया है और कहीं डूबता जा रहा है किन्तु अपने बाबूजी के सहज मार्ग की दैविक-विशेषता को क्या कहूँ कि जब भी मैं अथवा अहं के भाव का अब ख्याल आता है तो लगता है कि वह प्रियतम का साक्षात्कार पाने को ही कहीं विकल फिर रहा है। इतना ही नहीं अब मैंने पाया कि जब भी अपने होने का ख्याल मुझे याद करता है तो हमें हमारी मौजूदगी का सूक्ष्म आभास अब अपने बाबूजी के विराट् देश अर्थात् माइन्ड-रीजन (हिरण्यगर्भ के देश) में ही मिलने लगता है। मैंने श्री बाबूजी को उस समय जब यह हालत लिखी थी तब उनका उत्तर कितना सुन्दर था कि ''जब दैविक-विराट्-शक्ति के क्षेत्र में तुम आ ही गई हो तो तुम्हारा फैलाव भी विराट् में लय हो जायेगा।'' इतना ही नहीं अब वह हालत समक्ष में आकर मानों बोलने लगती है कि अब ईश्वरीय-देश की झलक का सौभाग्य भी तेरे बाबूजी महाराज तुझे प्रदान करेंगे। अब अहं के इस वृत्त से मुक्ति की दशा में सूक्ष्म और कारण शरीर भी घुल (डिज़ौल्व) जाते हैं और मुक्ति (लिबरेसन) की दशा पूर्ण हो जाती है। फिर मैंने पाया है कि इस महान-गति में अहं के इस वृत्त की सूक्ष्मता भी लय होना आरंभ हो जाती है। अन्त में जब आत्मा भी परमात्मा में प्रवेश कर जाती है तो मैंने भक्ति की चरम सीमा की गति में प्रवेश पाकर कबीर के कथन की हालत को ओढ़ लिया था कि 'ताके पीछे हरि फिरैं कहत कबीर,कबीर'। अब अहं के इस वृत्त का बंधन हमेशा के लिए टूट जाता है।

यह महत् माइन्ड क्या है? यह तो सभी जानना ही चाहेंगे। आज जब अतीत की महत् दशाओं का नक़्श श्री बाबूजी मेरे समक्ष में ज्यों का त्यों फैला रहे हैं तो यह लेखिनी चुप क्यों रहे? क्योंकि यह मालिक के वरद हस्त कमल का दिव्य-स्पर्श जो पाये हुये हैं। अब जब हिरण्यगर्भ की महत्-दशा को श्री बाबूजी समक्ष में फैलाये

हुये हैं तो इसके बारे में इस अनुभूति द्वारा मानों श्री बाबूजी का यह कथन भी स्पष्ट हो गया है कि ''आध्यात्मिक-उन्नति के तीन पक्ष होते हैं। प्रथम होता है ज़िक्र, दूसरा पक्ष है फ़िक्र और तीसरा पक्ष है मिलन''। अब उन्होंने तीनों पक्षों की दशा को भी मेरे समक्ष ज्यों का त्यों रख दिया है, जिसे मैं लिखूँगी। ममता की वाणी में सदैव खुलाव रहता है। यह कुछ भी छुपा पाने में असमर्थ रहती है। कदाचित् इसीलिये मुझे दूसरों में हर दशा को उतार पाने की क्षमता देने के लिए, एवं सरलता पूर्वक दैविक कार्य पूर्ण कर पाने की शक्ति को भी बाबूजी मुझमें उतार रहे हैं। तो लीजिए अब हर दैविक-दशा के विषय में सुनिये। आध्यात्मिक उन्नति का प्रथम पक्ष है हृदय-मंडल (हार्ट-रीजन)। श्री बाबूजी के कथनानुसार इसमें प्रियतम के ज़िक्र की दशा हमारे हृदय को अलौकिक आनन्द रस में डुबोये रखती हैं। जानते हैं क्यो? क्योंकि इस महत्-रीजन की यात्रा में मैंने पाया है कि कान हर समय, हर क्षण और हर एक से मालिक का ही गुणानुवाद सुनना चाहते हैं। जिह्वा हर समय ईश्वर के प्रेममय-गीत ही गाने में मगन रहती है। ध्यान में मानों सांसारिक नक़्श मिटकर मात्र दिव्य-छवि का सौंदर्य छाया रहता है। मन प्रत्येक पल मानों इस सोच में डूब जाता है कि इस दिव्य-छवि का श्रोत कौन है, और कहाँ है, जो आज धरा से लेकर ईश्वरीय-देश के क्षेत्र को भी प्रकाशित करता हुआ मुख्य दैविक-केन्द्र तक छाया हुआ है। इतना ही नहीं, बल्कि इस ज़िक्र की मगनता की प्यास जब सीमा से बाहर हो जाती है, बस तभी इस महत् हृदय-देश की सीमा, ईश्वरीय-शक्ति से पिघलकर, श्री बाबूजी में लय हो जाती है। मैं यह भी देख रही हूँ कि तभी भौतिक-बंधन से परे उठकर श्रेष्ठ ईश्वरीय परम शक्ति के महत् गर्भ (माइन्ड रीजन) अर्थात हिरण्यगर्भ के विशाल क्षेत्र में हमें प्रवेश मिल जाता है। अब माइन्ड रीजन की यात्रा में आध्यात्मिक उन्नति का अद्‌भुत दूसरा पक्ष मेरे समक्ष में व्याप्त हो गया है। कदाचित् अपने विषय की सत्यता में मुझे लीन कर देने के लिए ताकि इस लेखिनी का नत-मस्तक ऊँचा होकर कह सके कि मुझे अपने बाबूजी के वरद्-हस्त का चुम्बन मिला हुआ है। अहं के पाँचवें वृत्त की दशा का साथ भी, जब श्री बाबूजी में लय-अवस्था प्राप्त कर लेता है, तब अहं का पाँचवां वृत्त भी विलीन हो जाता है। अब देखें कि अहं का यह पांचवा वृत्त दैविक-प्रेम में खुद को गलाकर, भूला हुआ हमें किस दशा की यात्रा में प्रवेश दे रहा है।

लगता है सन्त कबीर ने भी 'सोलह शंख पै तकिया हमारो' कह कर मानों हमें बता दिया कि उन्होंने भी साक्षात्कार की दिव्य-गति पाने के लिए अहं के इन सोलह वृत्तों को पार किया था। श्री बाबूजी द्वारा बताये सहज-मार्ग में, अब समक्ष में, मैं एक अद्‌भुत गति यह पा रही हूं कि हृदय में ईश्वरीय-प्रकाश को ध्यान में रखते

हुए जब सहज ही हमारा ध्यान ईश्वरीय छवि में डूबा रहने लगता है तो अहं का आवरण झीना पड़ने लगता है एवं अहं के वृत्त का ईश्वरीय-सामीप्यता का निरन्तर सेंक पाने से पिघलना शुरू हो जाता है। क्रमश: ध्यान में हम ऐसे तन्मय रहने लगते हैं कि हमें शरीर की भी सुधि भूल जाती है। यहां तक कि शरीर भी ध्यानमय होकर अपना नाम, रूप और होने के भाव तक को बिसर जाता है, तभी श्री बाबूजी हमारे में इस पावन अनुभूति को उतार लाते हैं कि हम जहाँ भी बैठ जाते हैं, लगता है धरा पावन हो गई है अर्थात अहं का वृत्त गलने लगता है और हम जिधर भी निकल जाते हैं, वातावरण पवित्र हो जाता है। जानते हैं क्यों? क्योंकि अपने होने का भाव घुल जाता है। जब इस दशा का भान भी अनुभव में से हट जाता है और यह दशा जब हममें लय हो जाती है तभी तो अब समक्ष में फैली मेरी दशा बोल रही है कि अब आध्यात्मिक-क्षेत्र में हमारा डग अहं के पाँचवें सर्किल का बंधन तोड़कर आज़ाद हो गया है और जीवन-मुक्त की इस अनपायनी (जो पाई न जा सके) दशा ने मुझे अपने में समेट लिया है लेकिन यह क्या, अब तो अनुपम नज़ारा मेरे समक्ष में मानों आप-बीती सुनाने को प्रस्तुत है और मैं मानों इसे सुनने के लिए खुद को ही खोजने लगी हूँ।

अब होश आने पर मैं पा रही हूँ कि अहं के पांच सर्किल तो घुलकर मानों श्री बाबूजी में लय हो चुके थे और अब डग छठे सर्किल के घुलने की दशा की यात्रा में ही चल रहे हैं। अब मैंने यह भेद समझा है कि माइन्ड-रीजन की दशा में ईश्वर-मिलन की फ़िक्र मुझमें भर रही है अर्थात् हार्ट-रीजन ज़िक्र का स्थान है, और माईन्ड में मिलन की फ़िक्र की व्यग्रता प्रगट हो जाती है। एक और अनुपम दैविक-रहस्य अब यह मेरी समझ में आया है कि मुक्ति की दशा (लिबरेशन) तो मुझे अहं के ढाई सर्किल से आगे जाने पर ही मिल गई थी क्योंकि भौतिक बंधन से आजाद हो गई थी अब इस छठे सरकिल की दशा में पाँव रखने पर मैंने पाया कि छठे सर्किल में भक्ति की दशा का रूप बदल जाता है। अब लगता है कि आत्मा हमसे जुदा होकर परमात्मा में लय होती जाती है। शायद तभी अपनी दशा को बाबूजी महाराज को लिखते हुए मैंने लिखा था कि अब दशा के पहले आत्मिक शब्द लिखने के लिए मेरी लेखिनी तैयार नहीं है। ऐसा लगता है कि मेरी दशा अब आत्मा के बंधन से भी मुक्ति पा गई है। लगता है मानों आत्म साक्षात्कार की दशा मुझमें मालिक के सामने रिवील होकर खिल गयी है। इतना ही नहीं मानों मेरा अहं अब स्वयं ही ईश्वर के हवाले हो गया है और अब वह (अहं) स्वयं ही अपने होने के भाव को मालिक को समर्पित करके स्वयं को भूलकर मगन हो गया है और अब बाबूजी में लय होने लगा है। यह मात्र

उनका प्यार ही है जिस पर अहं भी बलिहार हो जाता है। कहाँ है ऐसी हस्ती और कैसी होगी वह दिव्य छवि?

इस छठे सर्किल की यात्रा की यह मीठी अनुभूति मानों स्वयं में ही खिली पड़ती है। यहां आत्म-साक्षात्कार (सेल्फ-रियलाइजेशन) की गति प्राप्त हो जाने के बाद आत्मा का परमात्मा में लय हो जाने की खुशखबरी हमें मिलने लगती है। यहां आत्म-निवेदन की दशा भी सदैव के लिए मालिक में लय हो जाती है। अब समक्ष की दशा बता रही है कि अब मानों अहं का बंधन स्थूल, सूक्ष्म और कारण को त्याग कर परम-तत्व परमात्मा में विलीन हो गया है। तब ही यह सत्य भी प्रत्यक्ष हो जाता है कि 'मैं' कहते हुये लगता है कि इस शब्द का बोध नहीं होता है बल्कि यह कहीं दिव्यता की गहराई से योग पाये हुये योगी लगता है। मैं का संकेत उस योगी से होता है जिसे मैंने मन की संज्ञा दी है। उनकी कृपा का आश्चर्य तो देखिये कि अब बाबूजी को अपनी दशा लिखते समय मानों मैं नहीं, बल्कि दशा ही दशा को लिखती है। अब श्री बाबूजी का कथन था कि "चौबेजी, आपकी कस्तूरी तो मर चुकी है, जो अब है वह मेरी है।" इसीलिये अब मुझे जो भी अनुभूति रहती, या जो भी दशा होती थी वह किसी अन्य की दशा सी लगती थी। ऐसा लगता था कि वह अन्य कौन है, कहाँ है, यह तो मैं नहीं जानती थी क्योंकि अब अहं की दशा मानों मुझमें से घट गई थी और मानों स्वतंत्रता पाकर ईश्वरीय-देश का द्वार खटखटाने का संकेत दे रही थी। मैं देख रही हूँ कि यह कैसी दैविक-मोहिनी फैली हुई है मेरे श्री बाबूजी की, कि लगता है एक आजाद-पक्षी बिना रोक टोक के गन्तव्य की ओर उड़ रहा है। यहां पर ही लेखिनी लिख उठी है कि अविरल-गति हो गई है मेरी। उन्नति में गति का बांध टूट जाता है क्योंकि सहज-गति ही भर जाती है। कदाचित् तभी मैंने श्री बाबूजी को लिखा था कि "बाबूजी, अब मेरे डग सहज-अवस्था में डूबे हुये सहज ही दौड़ रहे हैं।" लेकिन आश्चर्य यह है कि मेरे डग धरा के स्पर्श से ही नहीं बल्कि किसी भी तल का स्पर्श नहीं पा रहे थे, और अपने श्री बाबूजी में लय हुये सहज-गति का अनुसरण (फौलो) कर रहे थे। यहां यह सत्य भी प्रतीत हो रहा है कि श्री बाबूजी ने अपने सशक्त सिस्टम द्वारा हमें दैविक-दशाओं से सजाकर ध्यान की सहज-धारा में प्रवेश दे दिया है। कैसा अचम्भा था कि सहज-धारा में प्रवेश पाने पर हर पल लगता था कि अभी तक तो मैं किसी को खोज रही थी किन्तु अब यहां सतत् ही जब खोज करने की याद आती है तो लगता है मानों अब कोई मुझे खोज रहा था और मैं उसे मिल नहीं रही हूं। कबीर की दशा की पुनरावृत्ति मेरे बाबूजी ने मानों मुझ पर उतार दी थी कि 'मेरा राम मुझे भजे, तब पाऊं विसराम॥' इतना ही नहीं मालिक की दी हुई जो चेतना पल भर को ही सही मैं अभ्यासी हूँ इस बात का पता देती थी अब

वही मालिक की दी हुई चेतना ही मुझे बता रही थी कि श्री बाबूजी ने अब मुझे अहं के छठे सर्किल से पार कर दिया है अर्थात् अहं का छठा वृत्त भी गलकर विलीन हो गया था और उस स्तर की शक्ति का तब आधिपत्य भी उन्होंने मुझे बख्श दिया था। आज मेरा मस्तक जो यद्यपि उनमें ही लय हो चुका है, और भी नत होता हुआ अर्थात विनम्र-दशा में लय होकर उनके पावन चरण द्वय को हृदय में समेट लेना चाहता है। क्योंकि मैं भली भांति जानती हूँ कि हर स्तर की शक्ति का जो वे मुझे आधिपत्य प्रदान करते गये हैं, इसका अर्थ मैंने अब यही पाया है कि उनकी इच्छानुसार मैं अपने अभ्यासी भाई-बहिनों में आध्यात्मिकता की हर दशा उतार सकूँ और इसको कर पाने की क्षमता भी प्रदान की है, और इस दशा में हर क़दम पर मिली हुई सफलता इसका प्रमाण है। देखते ही देखते छठा वृत्त कहां विलीन हो गया, कब पार हो गया कुछ पता नहीं। अब सूक्ष्म अहं भी धुंधला पड़ने लग गया है, समक्ष में अब मानों अहं के सातवें वृत्त की दशा ऐसा बता रही है।

अब आप पढ़कर दंग रह जायेंगे कि मेरे बाबूजी अहं के सातवें सर्किल की पिघलन की दशा शुरू होते ही कैसा अनूठा सत्य प्रत्यक्ष में ला रहे हैं कि मैं देख रही हूँ, कि अब 'मैं' का अर्थ ही नहीं है बल्कि सूक्ष्म अहं की गति मानों ईश्वरीय-तेज (शक्ति) में ही समाने जा रही है। क्रमश: जब यह दैविक-तेज स्वत: ही मुझमें तेजोमय होने लगा, तब मैंने पाया कि जिधर भी मेरा शरीर चलकर जाता था तो लगता था कि समस्त में मानों दैविक-तेज ही फैलता जा रहा है। जहाँ बैठ जाती थी तो लगता था कि दिव्य-तेज ही समस्त में फैला जा रहा है। इतना ही नहीं आखिर यह अविरल गति भी लेखिनी लिख पाने में प्रसन्नता से फूली नहीं समा रही है कि दैविक-तेज ने यहां अहं के सातवें सर्किल को मानो स्वयं में ही लय कर लिया था। दूसरा भेद मैंने यहां यह प्रगट हुआ पाया कि सातवें सर्किल में कदम रखते ही अहं के आवरण के झीनेपन का यह कमाल था कि पारदर्शी के समान आठवें सर्किल की दशा का दृश्य भी नजर आ रहा था। कठिनाई यह थी कि इधर तो सातवां सर्किल अपनी दशा को बोल रहा था और आठवाँ सर्किल मानों कुछ अपनी ही बात बोल पाने को व्यग्र हो रहा था। अब सातवाँ सर्किल तो शीघ्र ही अपनी ईश्वरीय-तेज से तेजोमय हालत को आपके जानने के लिए सामने रखकर अपनी कुल दशा (सूक्ष्म अहं) के सहित श्री बाबूजी महाराज में लय हो गया और आठवें सर्किल की दैविक-दशा का धैर्य अब अपने दशा को प्रगट करने के लिए टूट गया है। तो लीजिये अब उसकी दशा भी आप सुन ही लीजिए।

अहं के आठवें वृत्त की दशा देख-देख कर आज मेरा अन्तर बाग़-बाग़ हो उठता है। लगता है कि यहां चारों ओर स्वयं परमानन्द का स्वरूप ही व्याप्त हो गया है।

मानों परमानन्द की दशा का दूसरा नाम ही आठवाँ सर्किल था। कदाचित् इसीलिए यहाँ अन्य विचार मुझे स्पर्श करने में भी संकोच करते थे। एक सत्य रहस्य श्री बाबूजी ने मेरे समक्ष और स्पष्ट कर दिया कि सातवें सर्किल के पिघलने की अति सूक्ष्म दशा में आठवें सर्किल की दशा की झलक पाना यह रंग लाया कि यहां से कुछ ऐसा सतत् समां बन गया था कि अब से मानों दो-दो वृत्तों की दशायें समक्ष में आकर लेखिनी को अपनी पावन- दशा बताने लगी हैं। जानते हैं ऐसा क्यों है? क्योंकि यहां से सूक्ष्म अहं अपनी दशा को स्वयं व्यक्त करने लगता है कि 'अ' का अर्थ है 'नहीं' और 'हम' का संकेत है अहं का, अर्थात् यहां अब अहं अपना भेद स्वयं स्पष्ट कर देता है कि 'नहीं है हम'। तो फिर अब हमारी दशा किस ओर प्रगति का संकेत दे रही है! जानना चाहेंगे आप? तो सुनिये। यदि हम नहीं हैं तो फिर सत्य क्या है? अ (नहीं हैं) हम तो फिर अब शेष क्या है? मात्र हम के ऊपर का बिन्दु (.) जिसे मेरे बाबूजी महाराज ने अपनी दैविक पुस्तक 'ऐफ़ीकेसी ऑफ राजयोग' में ज़ीरो की दशा का नाम दिया है। मुख्य विशेषता तो एक और भी है जो मेरे बाबूजी के प्यार में डूबी हुई है। वह यह है कि जबसे जितना ही हमारा ध्यान बाबूजी में डूबकर लय हो जाता है तो हमें अपना अस्तित्व भूलने लगता है और ईश्वरीय-देश से ईश्वरीय-सामीप्यता की झलक हमें अपने में खींचना आरंभ कर देती है। बस तबसे ही हमें श्रेष्ठ-देश की अनुपम गति एवं अनुभूति प्रदान करने की श्री बाबूजी की आतुरता भी कृपा की सीमा लाँघने लगती है। अहं के सर्किल्स ज्यों ज्यों घुलते हुये साफ़ होते जाते हैं, लगता है बाहर भीतर सोच का एवं ध्यान आदि किसी भी अनुभव का बंधन हमें छूता ही नहीं है। चाहे कैसी भी समस्या क्यों न हो ध्यान और अंतर हमेशा के लिए हमें आज़ाद ही मिलता है। कदाचित् इसीलिए श्री बाबूजी ने मुझे स्वत: ही लिखा था कि 'दशा जब अनुभव से हल्की पड़ जाती है तो खुद ही ऐसी सहज-व्यवस्था समक्ष में आ जाती है कि वह (अभ्यासी) कैसे रहे और अपने को किस प्रकार आप सबके समक्ष रखे। '' तभी मैंने श्री बाबूजी को लिखा था कि अब तो दशा खुद अपने बारे में हमें बताती है कि वह क्या है? एक रहस्य और है जो मेरे मालिक प्रत्यक्ष में रख रहे हैं, वह यह है कि लय-अवस्था की अनुभूति भी अहं के आठवें सर्किल के घुल जाने के बाद बदल जाती है। नवें वृत्त की दशा ईश्वरीय-सौंदर्य की झलक में लय होकर झूम उठती है। तो सुनिये, यह नवाँ सर्किल अपनी दशा के बारे में हमें क्या बता रहा है।

यहां लय अवस्था की अनुभूति ऐसी हो जाती है कि ईश्वरीय-सागर में डूबने पर लगता है कि अन्तर-बाहर सब पानी ही पानी है अर्थात ईश्वरीय सौंदर्य ही फैला हुआ है। यह दशा सूक्ष्मातिसूक्ष्म हो जाती है। अब एक और दैविक तथ्य मेरे समक्ष प्रगट

हो गया है कि अब अपने अस्तित्व की अनुभूति सदैव के लिए अपने को ईश्वरीय-धारा के सागर में समर्पित कर देती है। इस दशा का एहसास भी तो अब सहन नहीं हो पाता है। पानी से मेरा अभिप्राय ईश्वरीय धारा से है। यहां पर आज मैं प्रत्यक्ष देख रही हूँ कि अपना अस्तित्व अर्थात् अहं का आधार भी ईश्वरीय धारा में समर्पित होकर घुलने लगता है। यहां एक अद्‌भुत बात मैंने यह और पाई है कि वास्तव में अहं शब्द अपनी समीक्षा में खरा उतरता है अर्थात यह अर्थहीन होते हुये भी शक्तिशाली है क्योंकि जब हम ईश्वरीय-अंश होते हुये भी इसका (अहं) अंश बन जाते हैं तब यह अस्तित्वविहीन होते हुये भी शक्तिशाली बन जाता है। किन्तु इसको ईश्वर के समर्पण अवस्था में रखते हुये जब एक दिन हम भी अस्तित्वविहीन अवस्था पा जाते हैं तब श्री बाबूजी महाराज की लिखी हुई अवस्था 'ज़ीरो' (अहं से शून्य) को ही प्राप्त करके अपने साँचे अस्तित्व अर्थात ईश्वर के अंश की अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। इस नवें सर्किल के घुल जाने पर ही यह ईश्वर का अंश अपने वास्तविक-सौंदर्य अर्थात् डिवाइन-ब्यूटी के अक्स में सँवरने लग जाता है। जानते हैं क्यों? क्योंकि बिना ईश्वरीय सौंदर्य में सौंदन पाये उनका अंश भला कैसे उनके साक्षात्कार पाने के योग्य बन सकता है। किस लेखिनी की मजाल है जो अब आगे सिर झुकाकर भी 'कौन हैं ये' का होश बनाये रख सके! मैं भी अभी तो यह भी नहीं लिख पाऊंगी कि 'कैसी है वह दिव्य-छवि' जो मुझ पर यह प्रगट करना चाहती है कि वास्तव में आदि-शक्ति के हृदय का यह टुकड़ा (बाबूजी) प्राणिमात्र के हित अपने प्रेम का स्वयं ही प्रतीक है। अब नवें सर्किल की दशा तो इनकी ईश्वरीय छवि पर बलिहार हो गई है और अहं का अस्तित्व, नवाँ सर्किल भी घुलकर डिवाइन में मिल जाता है। श्री बाबूजी अब अहं के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अस्तित्व-विहीन दसवें सर्किल की दशा का भेद प्रगट करने के लिए मेरी लेखिनी को संदेश दे रहे हैं।

दसवें सर्किल का फैलाव यह बता रहा है कि यह उनके ही अनुपम प्रेम का विराट् श्रृंगार है। अब समक्ष में ईश्वरीय-शक्ति एवं सामर्थ्य का अद्‌भुत पसारा है। लगता है कि ईश्वर की परम-शक्ति यहां से ही रचना के लिए क्रियान्वित हुई थी, क्योंकि मैं देख रही हूं कि यहां की दशा ऐसी सहजता को प्राप्त है कि लगता है इसमें डग रखते ही अहंता का तो होश ही उड़ गया है क्योंकि मुंह छुपाने को भी इसे यहां ठौर नहीं मिलती है। क्योंकि 'मैं हूँ' यह भाव श्री बाबूजी महाराज की याद में घुलकर उनमें ही विलीन हो जाता है। तभी इस अद्‌भुत अलौकिक-शक्ति एवं सामर्थ का आभास अपने में पाकर मैंने श्री बाबूजी को इस दैनिक-अनुभूति के बारे में लिखा था कि ''बाबूजी ! मुझे लगता है कि रचना का प्रसारण मुझसे ही हुआ है। इतना

ही नहीं हज़ारों सूर्य, चन्द्र एवं आकाश उत्पन्न करने की क्षमता मानों मेरे में विद्यमान है। कदाचित् इसलिए कि जब भी मैं शब्द बोलती हूँ तो वह 'मैं' मानों अब आपके ही लिए इशारा होता है।'' यह अद्भुत तथ्य मैं कैसे आप सबके हित उजागर कर रही हूँ, मैं स्वयं ही नहीं जानती हूँ। उनका उत्तर था या मानों दैविक शक्ति की प्रत्यन्चा थी कि ''यह जगह हिरण्यगर्भ के केन्द्र की नहीं बल्कि रचनात्मक शक्ति के ठहराव के मुख्य केन्द्र ईश्वरीय-देश की है जहां से रचना का आगाज़ (उत्पत्ति) हुआ और प्रकृति का शक्ति-प्रवाह रचना को कायम रखने के लिए सतत् प्रवाहित हुआ है।'' अब आगे जो उन्होंने लिखा था उसे सुनकर आप कलेजा थाम कर खुद की सुधि बिसर जायेंगे। तो यह भी सुन ही लीजिये क्योंकि जब वे बोल रहे हैं तो मैं ही क्या समस्त वातावरण ही नि:शब्द है। आगे लिखा कि ''रचना की इस पूर्ण शक्ति के प्रवाह के ऊपर, तुम्हें ले जाना बिना हमारे समर्थ सद्गुरू लालाजी साहब (फतेहगढ़, उ.प्र.) की कृपा के मुमकिन ही नहीं है।'' आप क्षमा अवश्य करेंगे क्योंकि श्री बाबूजी के विषय में कुछ भी लिख पाना असंभव है क्योंकि वे विषय (सब्जेक्ट) नहीं है बल्कि आब्जेक्ट हैं जिनमें लय अवस्था प्राप्त करके, उनकी ही कृपा एवं प्राण शक्ति का सहारा पाकर, उनकी ही संरक्षता में, उनकी ही दिव्य निगाह की निगरानी पाकर, यह अनपढ़, अबोध बालिका इतने बड़े दैविक रहस्य को भी आपके हित उजागर करने जा रही है। उनके दर्शन एवं बातों से सदैव ही ऐसा प्रतीत होता था कि मानों अपने सद्गुरू के अतिरिक्त अपना नाम, रूप वे सब कुछ ही बिसरा बैठे हैं। यहां पर कौन कह पायेगा कि 'कैसी है वह दिव्य छवि एवं कौन है ये' इतना ही नहीं कौन समझ पायेगा कि समस्त में ईश्वरीय-साक्षात्कार पाने की ललक को जागृत कर देने के लिए ही वे हमारे हर पाइन्ट (बिन्दु) को शुद्ध करते हैं और उजागर अर्थात् फैलाव भी देते हैं। अन्तिम-सत्य के साये में, अभ्यासी हृदय में अपनी दिव्य-शक्ति का प्रवाह देते हुए दैविक-रसानन्द में डुबोकर उन्नति के शिखर पर पहुंचाते हैं।

यह कैसी उलटवासी उनके साथ रही है कि एक ओर तो यह नितान्त गिरा हुआ समय एवं स्वार्थ की चरम सीमा को छूती हुई मानव-इच्छायें एवं अहं के अंधेरे में डूबा इन्सान, हैवान बनकर एक दूसरे के विनाश में तत्पर है। दूसरी ओर इन्हें युग की पुकार ने इस अंधेरे-युग के वातावरण को अपनी दैविक-इच्छा-शक्ति द्वारा ईश्वरीय प्रकाश से पखारते हुए पावन प्राणाहुति शक्ति का प्रवाह देने हेतु बुलाया है। फलस्वरूप मानव-मन की ईश्वर से विमुख हुई सुषुप्त प्राय: दैविक-शक्ति को थपथपा कर जागृत कर देना- इसे युग का सौभाग्य कहूँ या समर्थ श्री लालाजी साहब (फतेहगढ़) का गौरव, जिन्होंने श्री बाबूजी महाराज को धरा पर उतार कर युग को गौरवान्वित बनाया है। कैसा विचित्र संगम

है- युग की दरिद्रता का और उनके महान् दिव्य-संकल्प का एवं मूल शक्ति पर स्वामित्व पाने का। आज भी समक्ष में उनकी पावन दिव्य-मुस्कान मानों विजय का संदेश देकर हमारे उन्नति के हौंसले को बुलन्द कर रही है।

अरे! यह क्या हो गया है। लगता है कि अहं का दसवाँ सर्किल घुलकर मेरे बाबूजी में ही समा रहा था और समक्ष में अद्वितीय एवं वास्तविक सत्य अपनी दैविक-छटा बिखेर रहा था क्योंकि क्षणिक सुधि आई तो मैंने पाया कि अब डग ईश्वरीय-देश में, पैरती हुई ईश्वरीय-गति में लय होते हुये मानों दूध में नहाई हुई उज्ज्वल दशा को प्राप्त कर चुके थे। यहां कुछ ऐसा दैविक-आकर्षण था जो स्वयं ही मानों मुझे निमंत्रण दे रहा था स्वयं में समा लेने के लिए। मानों अपने हाथ फैलाये प्रेम से मुझे दुलार रहा था पर मेरी दशा तो अव्यक्त थी। अभिभूत हुई मैं इस अनुभूति को सार्थक हुआ पा रही थी कि 'मैं' की प्रतीति मानों ईश्वरीय-सौंदर्य में परिणत होती जा रही थी। अपने होने का भाव मानों कहीं दूर से अपना पता कुछ इस तरह से दे रहा था कि वह स्वयं के अस्तित्व को नहीं जानता है कि वह किसका भाव है अर्थात् निगेशन (मैं नहीं हूं) की दिव्य दशा का प्रारम्भ था। आप श्री बाबूजी महाराज के द्वारा लिखित शब्द 'निगेशन' (मैं नहीं हूँ) के बारे में भी तो कुछ जानना चाहेंगे तो लीजिए।

इस दशा के बारे में यों कह लीजिए कि 'मैं नहीं हूँ' का भाव भी जब मालिक में लय हो जाता है तो सहज अहं जो नहीं है इसका भाव स्वतः ही कभी समक्ष में आ जाता है क्योंकि इसका मात्र अक्स अभी कहीं ज़िन्दा है या यों कहें कि कहीं गहराई में अभी इसका अक्स प्रतीति के पटल पर आ जाता है। सत्य दशा तो यह होती है कि अनुभूति के अछूते रहने पर भी कहीं अहं का डूबा हुआ भाव हमें अपने होने का संकेत दे जाता है। यद्यपि यह पारदर्शी (ईश्वरीय) के भीतर से ही झाँक पाता है। यह है निगेशन की हालत। अब भक्ति भी मुझे यह कह कर छोड़कर चली गई कि अब अहं के निगेशन की दशा की भी अर्थात् ग्यारहवें एवं बारहवें सर्किल के भी घुलकर लय होने की बारी आ गई है।

अब यहां दिव्य ईश्वरीय-देश में ग्यारहवें व बारहवें सरकिल की दशा भी घुलकर स्वयं लय होने की तैयारी में थी। जानते हैं यहां की दैविक-अव्यक्त गति क्या कह रही है? यह हमें जताना चाहती है कि मेरी दशा हिरण्यगर्भ की शक्ति को (माइन्ड-रीजन को) पार कर चुकी है और ईश्वरीय-देश के द्वार में भी हमें प्रवेश मिल गया है। जैसा मैं ऊपर लिख चुकी हूँ कि अब तो यहां की दशा ईश्वरीय-पारदर्शी के समान ही मुझे अपना हवाला दे रही है क्योंकि अहं का

अस्तित्व गल रहा था तभी मैंने श्री बाबूजी को लिखा था कि मैं तो अब अपनी दशा नहीं बल्कि लगता है ईश्वरीय दशा की दशा ही लिख रही हूँ।'' तब उन्होंने उत्तर दिया था कि ''जब फ़नाइयत भी फ़ना होने को तैयार हो उस दशा के बारे में सिर्फ 'मुबारक हो' कहने के अलावा और कहा भी क्या जा सकता है।'' अपने होने का भाव पूर्ण रूप से तिरोहित हो गया था और निश्चिन्तता ऐसी कि मानों हमें लक्ष्य मिल गया हो। अब ग्यारहवाँ एवं बारहवाँ वृत्त भी अपनी ईश्वरीय दशा में देखते ही देखते विलीन हो जाते हैं। मुझे भलीभांति स्मरण है कि मैंने कभी श्री बाबूजी को लिखा था कि 'तड़प ऐसी है कि प्यास को भी पी जावे'। तब श्री बाबूजी का उत्तर था कि ''बहादुरी तो तब है जब हज़ारों समुद्र मारिफ़त (ईश्वरीय-ज्ञान) के पी जाओ और मुख से यही कहो कि और लाओ, और लाओ।'' और आज यह निगेशन की गति पुकार कर कह रही है कि ''तड़प को देखा तड़पता'' क्योंकि मैं नहीं जानती कि यह तड़प किसकी है और किसे छोड़कर अकेली रह गई है। पुन: ''प्यास खुद को पी गई'' तेरहवें और चौदहवें वृत्त की यह दशा लिखकर मेरी लेखिनी श्री बाबूजी के चरणों में नत होकर मानों स्वयं के अस्तित्व को भुला ही बैठी थी। एक बात और मैने पाई है कि अब जब आई अर्थात् मैं अकेला रह गया तब मैंने देखा कि मेरा आत्म- निवेदन स्वीकार हो गया था। आप आश्चर्यचकित रह जायेंगे जब मैं आपको बताऊँगी कि मेरे बाबूजी ने अब उपर्युक्त दैविक-दशा को भी ईश्वर में लय करके अपनी इस लेखिनी को संदेश दिया है कि मेरी यह दशा तुरियावस्था को भी भा (अच्छी लगी) गई थी और वह स्वयं ही ईश्वरीय रंग में रंगकर मुझसे कह बैठी कि अब दिव्य-देश तेरे समक्ष है यहां अहं का गम्य ही नहीं है इसलिए कि वृत्त तो धुल कर मिल गये हैं। अब तो अहं के सूक्ष्म अक्स की गति भी तेरहवें और चौदहवें वृत्त को छोड़कर ईश्वरीय द्वार में मुझे प्रवेश दे गई है। वहाँ की महत् शक्ति और परमगति भी प्रदान करके मानों तेरहवें और चौदहवें सर्किल की हालत ईश्वरीय देश में ही लय होना चाहती है।

अब मैं क्या हूँ? कुछ भी तो नहीं। किसकी प्रतीक्षा मुझे यहां तक ले आई है यह बतायेगा भी कौन? यहां तक कि स्वयं ईश्वरीय-गति अपनी पावन एवं दिव्य रूप में पारदर्शी के सदृश मेरे और डिवाइन के बीच में खड़ी होकर मानों मेरी भूली बिसरी सुधि को जगाकर यह बता रही थी कि अब इधर की झलक, अर्थात् निगेशन की दशा की झलक के अक्स को डिवाइन सौंदर्य की झलक, अपने में मिलाकर स्वत: ही एक करती जा रही है। एक रहस्य जो आप स्वयं पहचान ही लेंगे कि आज उनकी (बाबूजी की) कृपा-दृष्टि किस प्रकार

बयालिस तैंतालिस वर्ष पहले अपनी इस बिटिया में उतारी हुई इन तमाम दिव्य-गतियों को इस प्रकार समक्ष में ला रहे हैं मानों मैं अब ही इन गतियों से गुजर रही हूँ। अंतर इतना है कि पहले ये मेरी अनुभूति थी और अब मैं अपने बाबूजी की ही नज़रों से समक्ष का नज़ारा देख रही हूँ। अब क्या घुलेगा (डिज़ॉल्व होगा) क्या नहीं, यह तो मैं नहीं जानती हूँ क्योंकि दुई का आभास मानो खुद ही मुझसे पर्दा कर गया है। अब तो लगता है कि लय- अवस्था भी लय हो गई है और मैं निगेशन अर्थात् कुछ नहीं है की हालत को भी खोये हुये असमर्थ सी हुई बैठी हूँ। यहाँ लगता था कि मानों वह बात भी मेरे में न थी कि कोई भाव भी मुझमें उठ पाता।'' प्रेम गली अति साँकरी, या में द्वै न समाय'' कबीर के इस कथन का रहस्य आज मेरी हालत के रूप में, मानों अपना अर्थ स्वयं मेरे लिए प्रत्यक्ष कर गया था। प्रेम, भक्ति, फ़ना, फ़नाये-फ़ना के साथ तुरियावस्था भी ईश्वरीय छवि को समक्ष में पाकर अपने समर्पण भाव के सहित ही समर्पित हो गई थी। मैं तो कहने मात्र की ही रह गई हूँ वैसे इस ईश्वरीय देश में सर्किल की तो गुज़र ही कहाँ है। किन्तु श्री बाबूजी ने अहं के सोलह सर्किलों के बारे में, जिससे अभ्यासी को मुक्ति दिलाने के लिए उन्होंने इनको अपने प्यार की कैद में लेकर, अपनी सतत् सामीप्यता का सेंक देकर क्रमशः घुला दिया और अभ्यासी को अहं की कैद से मुक्त कर दिया। कौन लाया है कभी ऐसा सहज-मार्ग तरीका जो स्वयं ही तरीके से मुक्त है और अभ्यासी को साक्षात्कार का महत् प्रसाद देकर इसे भी अहं से मुक्त कर सहज-सत्य-दशा पर प्रतिष्ठित कर देता है। जब इस कुल दशा का ब्यौरा लिखवा कर मेरे लेखन को वे धन्य करना ही चाह रहे हैं तो फिर मेरी लेखिनी मौन भी क्यों रहे। यह तो डंके की चोट, आनन्दोल्लास में डूबी हुई बोल रही है कि ऐसा न तो कभी हुआ है और न अब कभी होगा। उनके अतिरिक्त ऐसा लेखन कोई लिखवा भी नहीं सकेगा।

अब तेरहवें, चौदहवें सर्किल की अनुपम दशा अपनी बात कहकर खुद को ही खो बैठी है अथवा यूं कहूं कि इतने प्रिय बाबूजी का सतत् साथ पाने के सौभाग्य के लोभ को संवरण न कर पाने के कारण उनमें ही लय हो गई है। बस यही इनकी दशा का अनुभवविहीन अनुभव है। तो फिर अब यह लेखिनी भला कैसे उठ पायेगी यह लिख पाने के लिए कि पंद्रहवाँ और सोलहवाँ सर्किल अपने दिव्य दशा का क्या ब्यौरा देने जा रहा है। ये दोनों सर्किल्स, अपने सूक्ष्मातिसूक्ष्म हुये अस्तित्व को ईश्वरीय-छवि की ओट में कैसे संभाल रहे है। यह बारीकी तो श्री बाबूजी ही पकड़ पाये हैं। मैं तो बस इतना ही जानती हूँ कि मेरे बाबूजी ही इनके अस्तित्व का रहस्य उजागर कर

देने के लिए अब यह भेद भी मेरे समक्ष ऐसे रख रहे हैं कि मानों अब अहं का वहम ही शायद अपना पता दे रहा है, शेष कुछ भी नहीं बचा है।

मैं तो पहले ही कह चुकी हूँ कि लगता है मेरी लेखिनी तो दम तोड़ चुकी है। अथवा यों कहूँ कि यह अहम् का वहम भी श्री बाबूजी को प्यारा हो गया है। मेरी लेखिनी तो यह भी भूल चुकी है कि कभी इसने कुछ लिखा भी है। लेकिन यह क्या? मेरे बाबूजी महाराज ने अपने वरद्हस्त की संजीवनी देकर, अपने ही हस्त-कमलों द्वारा इसे पुन: उठा लिया है और यह भी अस्तित्व-विहीन सी मानों उनकी ही उंगली के इशारे पर पुन: उठ गई है। अब आप हालत की नाजुकता को तो देखिये। होश उड़ाये हुये मानों अब हालत की भी हालत नहीं, वरन अहं का वहम भी मेरे होने के भाव का मानों मात्र अवशेष बनकर रह गया है। हालत क्या है मानों ज़िन्दगी से रहित ज़िन्दगी जी रही थी। वह भी ऐसे कि लगता था कि ज़िंदगी में अब ईश्वरीय शब्द योग पा गया था क्योंकि ईश्वरीय-देश में तो समक्ष में ईश्वरीय शक्ति का ही पसारा फैला हुआ था और मैं शब्द नितान्त विलीन हो चुका था। मेरे जीवन सर्वस्व श्री बाबूजी का यह दिव्य कथन मेरे समक्ष अपनी परिभाषा को इस दशा के रूप में प्रगट कर रहा था कि "मैं का 'यू' (तुम में) में मिल जाना ही साधना की चरम सीमा है।" इतना ही नहीं उन्होंने समस्त को आगाह भी कर दिया है कि आज इस श्रेष्ठ ईश्वरीय-देश की दैविक-गति की प्राप्ति भी हमारे लिये सम्भव हो गई है। मेरी यह अनुभूति कि 'मैं' तुम में मिल गया है', इस अनुभव को भी चरितार्थ कर रही है कि एक दिन श्री बाबूजी यह शुभ घड़ी भी अवश्य ले आते हैं कि अहम् के इस दैविक शेष का अवशेष भी लय हो जाता है अर्थात् मैं (आई) तुम में (यू में) डूब जाता है।

कैसा अनुपम सुहावना समां है यहां। समक्ष में चारों ओर शाश्वत् शान्ति, शाश्वत्, सरलता एवं सादगी का फैलाव है। अब क्या लिखेगी लेखिनी जबकि मैं तो यही समझ पा रही हूँ कि ईश्वरीय ड्योढ़ी में प्रवेश पाने का सौभाग्य प्रदान करके मानों मेरे बाबूजी ने अपने ही नाम को चार चाँद लगा दिये थे। मुझे तो यहाँ ऐसा लग रहा था कि मेरे समक्ष साक्षात् ईश्वर ही प्रगट हो गया हो। दशा क्या थी मानों पूर्ण ईश्वरीय-शक्ति एवं सामर्थ्य का दर्शन मुझमें ही प्रत्यक्ष हो उठा था। ईश्वरीय-दशा की नाजुकता तो देखिये कि यहां आज़ादी का क्षणिक एहसास भी बंधन मालूम होता था। इससे भी अधिक आश्चर्यचकित तो मैं तब थी,जब इस परम-गति की गहनता का भेद श्री बाबूजी ने मेरे समक्ष स्पष्ट किया था। तब तो मेरी बेसुध अवस्था भी बेखुद (अहं से परे) हो गई थी मानों अब ईश्वर का भान प्रतीत होना भी यह बताता है कि अहं का प्राण, चाहे वह महत् ही क्यों न हो कहीं था अवश्य। किन्तु यह भेद भी स्पष्ट

हो गया है कि अहं की इस अन्तिम सूक्ष्मातिसूक्ष्म गति का भान देते हुये मेरे बाबूजी ने ईश्वरीय शक्ति को मुझमें उतार कर जब अपनी बिटिया को निगाह भर देखना चाहा था तभी अहं की गरिमा के साथ मेरा सब कुछ अर्थात् ईश्वरीय गतियां अनुभूतियां भी उस निगाह में लय हो गयीं थीं। इतना ही नहीं लय होते-होते मानों मुझे साक्षात्कार की यथार्थ दशा की दैविक परिभाषा भी बता गयी थी कि "या में द्वै न समाय"। क्या और कैसे कहूँ उनके बारे में जिनके प्रेम की मात्र छलकन ने ही अहं के सारे सर्किल्स, को अपनी सामीप्यता के सेंक से पिघला कर, आज साक्षात्कार की दिव्य दशाओं को भी अर्पण (लय) कर दिया है। मुझे लग रहा है कि अहं के बन्धन से मुझे ही नहीं वरन् मेरे बाबूजी ने ख़ुद अहं को भी आज़ाद कर दिया था।

कैसा दैविक एवं बेमिसाल कमाल है उनके करम का कि मानव के अहं को सोलह वृत्तों में कैद करके, क्रमश: अपनी इच्छा-शक्ति द्वारा, पावन-प्राणशक्ति का अभ्यासी के हृदय में प्रवाह देते हुये, अपनी दैविक सामीप्यता का सेंक देकर, पिघलाते हुये, ईश्वर में ही लय कर देते हैं। अब इस अस्तित्व-विहीन अस्तित्व की दशा का आधार मुझे स्वयं ईश्वर ही महसूस होता था। सहज-मार्ग साधना द्वारा इस दैविक अनुभूति को क्रियान्वित रूप देकर आज बाबूजी खुद अपनी ही मिसाल बनकर खड़े हैं। उनका यह कमाल आध्यात्मिक जगत में सदैव अद्भुत- दिव्य-चेतना का द्योतक रहेगा। भूमा के इस अद्भुत गोपाल (बाबूजी) ने, आदि शक्ति को, अपनी मुट्ठी में लेकर, आज अद्भुत अंतिम सत्य के दिव्य-भेद को प्राणिमात्र के समक्ष बिखेर दिया है। प्राणी मात्र के लिए ही नहीं, वरन् मानों अहं का भी उद्धार करने के लिए ये धरा पर अवतरित हुए हैं। इतना ही नहीं बल्कि जब मैं भूमा के अनन्त वैभव के केन्द्र के द्वार (सत्य पद) पर भौंचक खड़ी रह गई तब वृत्त विलीन हो गये थे मानों उनकी मृदु मुस्कान के नेह-निमंत्रण ने, अनजाने ही, मुझे अनन्त-क्षेत्र सेंट्रल-रीजन में प्रवेश दे दिया था। अब इस अनूठे प्रश्न का उत्तर मैं भला कैसे दे पाऊंगी जबकि लेखिनी ही मुझसे पूछती है कि 'ये कौन हैं?'

अहं के सोलह वृत्त से विहीन हो जाने की श्रेष्ठ दशा को प्राप्त हो जाने के बाद भी जब श्री बाबूजी ने मुझे लिखा था कि "यदि आध्यात्मिक श्रेष्ठ गतियों के आनन्द का अन्दाज़ भी तुम्हें है तो मैं यह कहूँगा कि भोग तो रहा ही चाहे वह आध्यात्मिक-गतियों के परमानन्द का ही क्यों न हो।" मैंने जब श्री बाबूजी को यह लिखा कि "मेरी कुछ ऐसी दशा है कि मानों दिव्य परमानन्द स्वयं में ही आनन्दित हो रहा है, मैं तो मात्र दृष्टा के सदृश ही खड़ी हूँ।" तब उन्होंने यही लिखा था कि "लालाजी का शुक्रिया है कि तुम्हें अहं के चंगुल से आज़ाद कर दिया है।" आज

कितने ही वर्षों बाद मेरे समक्ष में पुन: उस हालत का रहस्य जो उन्होंने प्रत्यक्ष किया है, आपसे यह भी तो कह रहा है कि जब उन्होंने अहं के चंगुल से मुझे आज़ाद किया तो फिर मेरा अस्तित्व ही क्या और मैं क्या। उनकी कृपा से आज ज़ीरो या शून्य की हालत बता रही है कि अहं के समाप्त हो जाने की गति ही शून्यावस्था है। दैविक दशाओं का अनुपम अर्थ अब मेरे समक्ष स्पष्ट करने वाले मेरे बाबूजी अनुपमेय हैं। मानों वे अपने इस कथन को समस्त के हित स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि "मुझे खुशी है कि मेरी हालतों की पुनरावृत्ति तुममें हो रही है।" किन्तु मैं कहती हूँ कि उनके ममत्त्व की थिरकन ने, मानों लेखन को आपके लिए सहेज कर, लेखिनी को मेरे, हाथों से मुक्त कर दिया है। उनकी प्यार भरी निगाह ने मानों पुस्तक के अक्षर अक्षर में अनुपम भक्ति की हर अवस्था को व्यक्त कर दिया है। अनुपम भक्ति की तीन गतियों में मैंने सारा कुछ समाहित पाया है। प्रथम अवस्था एवज़ॉर्वनेस डूबा रहना अर्थात् उनकी ब्लेसिंग्स अर्थात् आत्मिक दशा की अनुभूति में डूबे रहना है। दूसरी अवस्था है कि ईश्वरीय ध्यान में इतना डूबे रहना है कि अपने होने का भाव डिज़ौल्व अर्थात् घुलने लगता है और भक्ति की तीसरी अवस्था तो अद्‌भुत है लय होते जाना, अर्थात् अपने प्रियतम के ध्यान में डूबे रहने से अहं भाव घुल जाता है और हम उनमें ही मिलकर ईश्वरीय गति में एक हो जाते हैं। तभी तो मेरी लेखिनी उस समय गुनगुना उठी थी कि-

याद आती हैं निगाहें वह प्यार की हमको।
रूह को तुमने खरीदा था याद है हमको॥

और अन्तर भी पुकार उठता है कि मालिक एक और केवल एक है अहं ज़ीरो अर्थात् शून्य है। तभी तो यह दिव्य-दशा पुकार उठती है कि अब बूँद को सिन्धु में समा जाने की यह पावन घड़ी विश्व के लिए नेह निमंत्रण ले आई है कि :- प्रियतम पर प्यार को न्यौछावर करके उनका ही हो जा।

- संतों का कहना है कि "Know theyself" मैं कहना चाहता हूँ कि "forget thyself" (श्री बाबूजी)
- 'लक्ष्य' को प्राप्त करने के लिये विचार में दृढ़ता, सतत्-तड़प एवं बेचैनी ही सफ़लता की कुंजी है। (श्री बाबूजी)

सात रिंग्स

कैसा है यह अनुपम एवं दिव्य नज़ारा, जो अब मेरे समक्ष में स्पष्ट है। मैंने पाया है कि इसे प्रत्यक्ष देखकर लिख पाने के लिए कृपा करके श्री बाबू जी ने मुझे दैविक होश (Divine Conciousness) भी दिया है। मैंने पाया कि यहां वतन की कशिश मानों मुझे अपने में समेट लेने के लिए राह देख रही है। माँ का प्यार कितना अनूठा होता है जो सात द्वारों के भीतर से भी मानों मुझे थपथपा रहा था और मैं? महापार्षद की अनुपमेय दशा में घुली हुई, अस्तित्व-विहीन-अस्तित्व को भी भूली हुई उन थपथपाने वाले वरद्-हस्त कमलों के मधुर स्पर्श को पाकर, अब धरा पर अवतरित उस तेजोमय दैविक-विभूति का परिचय पा रही थी। तभी एक अचम्भा हुआ। मुझे लगा कि मेरे बाबूजी का यह कथन मेरे समक्ष अपनी सत्यता को उघार रहा था, कि रचना के लिए आदि श्रोत की परम शक्ति, घेरे (सर्किल) के रूप में ही उतरी थी क्योंकि आदि-श्रोत के अत्यन्त समीप होने के कारण शक्ति में अत्यन्त घनत्व था। यही कारण था कि इन सात रिंग्स (घेरों) में हमारी गति (चाल) भी घेरे के रूप में ही चलती है। श्री बाबू जी महाराज ने जब मुझे रिंग्स में प्रवेश दिया था तब तो मैं इनमें नितान्त अनजान एवं अनभिज्ञ रूप में ही चल रही थी। किन्तु आज लगता है कि आदि-शक्ति के यह सातों दिव्य घेरे अपना गहन रहस्य स्वयं ही प्रगट कर देना चाह रहे हैं। यह रहस्य भी स्वयं में अनुपमेय है कि भूमा के इन सप्त द्वारों में दशा स्पन्दनहीन है। इसलिए यहां पैराव अर्थात् स्विमिंग की भी गम्य नहीं है। यहां पर मानों ज़ात का अपना कैरेक्टर या विशेषता एवं चलन ही महत्त्वपूर्ण है। यहां की महत्वपूर्ण, दैविक अविचल गति अपना पता खुद देती है कि यहाँ श्री बाबूजी मुझे शक्ति-विहीन-शक्ति अर्थात् फ़ोर्स-लेस-फ़ोर्स से ही आगे ले चलते हैं। किन्तु इसका भी हमें एहसास नहीं होने देते हैं क्योंकि भूमा के इन सप्त द्वार के अंदर, मात्र उनकी ज़ात, के किसी दूसरे की गम्य ही नहीं होती है और यहां का डिवाइन अंदाज़ ही हमें अपना अंदाज़ भी खुद ही देता है। वह भी कदाचित् इसलिए कि श्री बाबूजी महाराज का कथन है कि मैं डिवाइन का कोई भी राज़, राज़ नहीं रहने दूंगा। आज मुझे यह सत्य भी स्वीकार हो गया है कि अंतिम-सत्य (भूमा) भी, उनके समक्ष, खुद को पर्दे में नहीं रख सका। एक राज़ और भी है जो आज उन्होंने मेरे समक्ष उज्ज्वल कर दिया है, वह यह है कि ब्राइटर वर्ल्ड का पैराव पूरा होने के बाद ही, बाबूजी ने मुझे आदि केन्द्र भूमा के प्रथम द्वार (रिंग) में प्रवेश दिया था। यहां यह रहस्य लिखना नितान्त आवश्यक है कि श्री बाबूजी ने बहुधा कहा है कि लालाजी साहब

अथवा स्वामी विवेकानन्द जी एवं अन्य श्रेष्ठ आत्मायें ब्राइटर वर्ल्ड में स्विमिंग करती रहती हैं, लेकिन इन महान् आत्माओं को अधिकार है कि जब चाहें वे अपने दिव्य-स्थान को छोड़कर, धरा पर उतरी दैविक-विभूति के साथ कार्य करें। यह महत् शक्तियाँ तब सजग हो गई थीं जबकि श्री बाबूजी महाराज (दिव्य-विभूति) मानव हित में अपने दैविक संकल्प को पूर्ण करने के लिए दैविक कार्य में तत्पर हो गए। अब लेखिनी भूमा के घुमावदार सात रिंग्स अर्थात् सप्तद्वारों की गति के विषय में लेखन के लिए उठने का साहस कर रही है।

भूमा के प्रथम रिंग को द्वार कहूँ अथवा भूमा का गौरव कहूँ कि इसमें प्रवेश पाते ही मैंने पाया कि यहां की गति के सादे चलन एवं यहां की सहज प्रकृति में अभ्यासी का मिलना प्रारम्भ हो जाता है। इतना ही नहीं यहां के अपने ही सदाचार एवं दिव्य वातावरण में मेरे अस्तित्व का आधार भी विलय हो गया था। उनकी कृपा की चरम-सीमा तो देखिये कि मेरे अस्तित्व के भी अस्तित्व अर्थात् आधार को भी श्री बाबूजी की फ़ोर्स-लेस-फ़ोर्स ने स्वत: एवं सहज ही रिंग की स्पन्दनहीन, अविरल गति में मानों फेरा देकर मिला दिया था फिर दूसरे रिंग में प्रवेश दे दिया था। इस प्रथम दिव्य द्वार के प्रवेश के समय से लेकर अन्तिम-सत्य तक पहुँचने में मैने पाया मानों वतन की कशिश खुद मुझे अपने में समेट लेने के लिए राह देख रही थी।

कहते हैं जल की गहराई जहाँ अधिक होती है भँवर वहीं बनता है जिसका चलन घुमावदार होता है। भँवर में मनुष्य को खुद में लपेटकर, तह तक ले जाने की ताक़त होती है। इसीप्रकार भूमा के यह सात द्वार आदि शक्ति के भँवर के रूप में हैं। इनमें प्रवेश पाते ही मैंने यह पाया कि यहां शक्ति में मुझे अपने में मिला लेने की कशिश मौजूद है। कदाचित् इसलिए कि अभ्यास तो हमसे न जाने कबसे विदा लेकर हमें स्वतंत्र कर गया है और अनुभूति भी मानों यह कह कर पहले ही मुझे विदा दे चुकी थी कि कण-कण में व्याप्त अनन्त-शक्ति अब तुझे गोद में लेकर तुझे पाने के एहसास की अनन्त-अनुभूति, में गोता ले लेगी। यहां का यही सत्य मैंने सहज ही पा लिया था। एक आश्चर्य यह भी मैं पा रही हूँ कि मेरे श्री बाबूजी महाराज मेरे समक्ष यह प्रगट कर रहे हैं कि एक से दूसरे रिंग में जाने पर उस रिंग की कशिश बढ़ती जाती है। कदाचित् इसलिए कि एक के बाद दूसरा, तीसरा रिंग, आदि-शक्ति अर्थात् अल्टीमेट के अधिक समीप होते जाते हैं। यह भेद सात रिंगस् के बारे में लिखने के बाद मालिक ने मेरे समक्ष में रखा है। यहाँ का समाँ स्पन्दनहीन होने के कारण ही श्री बाबूजी ने मुझे फ़ोर्स-लेस-फ़ोर्स से ही सातों रिंग्स से गुज़ार कर आदि-केन्द्र (भूमा) के देश में प्रवेश दिया था। यहां का अथवा रिंग्स में प्रवेश पाने पर, एक रहस्य

यह भी तो वे स्पष्ट कर रहे हैं कि यहां दशा नाम की कोई चीज़ नहीं मिलती बल्कि खुद भूमा का अपना ही पसारा है जो देखते हुये भी हमें देखने नहीं देता है, नवीनता का कोष होते हुये भी हमें नयेपन की अनुभूति नहीं देता है।

एक भेद का अनावरण यहां मैने और पाया है कि एक रिंग का स्वत: चलन यानि फ़ोर्स-लेस-फ़ोर्स मानों मुझे एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे रिंग्स को स्वत: ही सौंपते गये। यह भी आश्चर्य है कि अब मानों डिवाइन होश भी मात्र उतनी सी ही देर को मुझे दिया था जिस समय एक रिंग ने मुझे दूसरे रिंग को सौंपा था। बस वही श्री बाबूजी की मृदु-मुस्कान में डूबी हुई क्षणिक दिव्य-चेतना डिवाइन कान्शसनेस मुझे बतलाती गई क़ि मैं कौन से रिंग में पहुँच गई हूँ। हां यहां के समां में ही डूबी हुई एक दिव्य-दशा सदैव मुझे यह बताती रही कि बस एक दिव्य एवं स्वत: पारदर्शी मानों हर रिंग को पार करते समय बताता रहा कि वह पारदर्शी और झीना होता जा रहा है। एक दैविक आश्चर्य तो मुझमें तब कौंध गया जबकि सातवें रिंग में जो आदि केन्द्र के गिर्द था, पहुँचते ही मेरी प्रतीति एक हो गई और मैं भूल गई कि मैं वो हूँ या यह हूँ। तभी मेरी लेखिनी गुनगुना उठी-

"संध्या सलवट ओढ़नी की, देखते बस हम रहे"।।

अर्थात् आदि-छवि से ओत प्रोत ऐसी सामीप्यता कि जैसे उस पार और इस पार के मध्य मात्र दिव्य-पारदर्शी स्वप्नवत् ओढ़नी की सलवट का ही अलगाव रह गया है। उस पार आदि-छवि और इस पार उनकी ही अक्स स्वरूप मैं थी। लेखिनी सोच में डूबकर मौन हो गई कि आखिर इतनी सी ही दूरी क्यों रखी मेरे मालिक ने। और अब मानों सातवें रिंग (भूमा के अन्तिम द्वार) से लेकर मेरे बाबूजी ने मुझे अन्तिम-सत्य की चौखट की नज़र कर दिया था। सात रिंगस् का यह दिव्य-तथ्य आज उन्होंने मेरी लेखिनी द्वारा समस्त के लिए स्पष्ट कर दिया है। वैसे तो जब स्वयं अपने बाबूजी की दिव्य-खोज (रिसर्च) को समस्त के हित उजागर करने के लिए इस विषय में लेखन के समय आज मैं जो दैविक-नज़ारा समक्ष में पा रही हूँ, वह मैंने उस समय भी नहीं पाया था जब मैंने उनके साथ सातों-रिंगस् में (भूमा के सप्त-द्वारों में) प्रवेश पाया था। सच तो यह है कि हमारी गहन-अनुभूति भी क्या कहे जबकि यह विषय न होकर डिवाइन का भेद है। आज जब डिवाइन ही (श्री बाबूजी ही) मुझे अपनी ओट में लेकर मेरे समक्ष दिव्य-भेद को प्रगट कर रहे हैं तो यहां की रियैलिटी (असलियत) को भी मानों वाणी मिल गई है और तभी लेखन भी तेजोमय हो उठा है। भूमा के सप्तद्वारों से मुस्कुराती शक्ति मानों हमें अपने आँचल में समेट लेने के

जात भूमा के गिर्द का समा है,
अथवा DIVINE ETIQUETTE
ही उसकी जात है

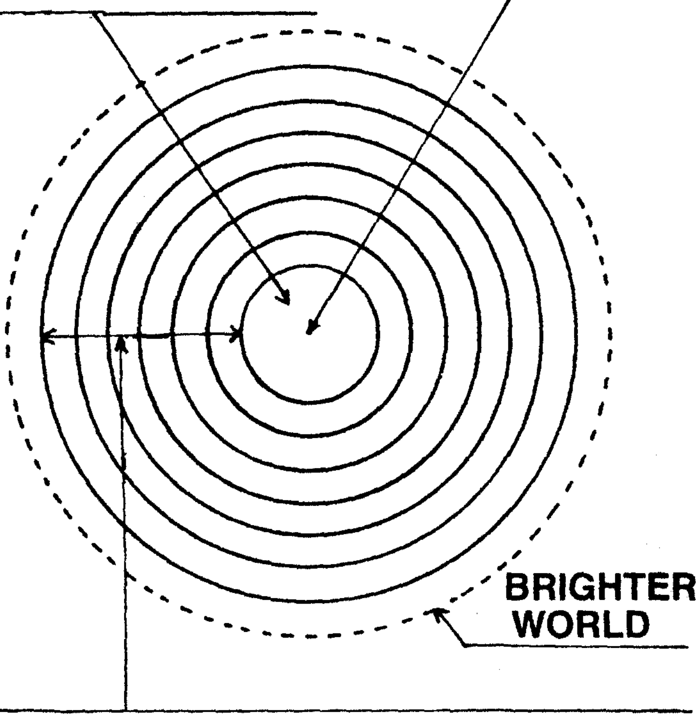

सात रिंग्स में दशा स्पन्दनहीन है, इसलिये यहा FORCELESS FORCE से श्री बाबूजी हमें ले चलते हैं। BRIGHTER WORLD तक SWIMING होती है।

लिए अपनी सहज-शक्ति द्वारा हमें निमन्त्रण दे रही है कि "आ जाओ, मेरे सातों पट (द्वार) भी आज समस्त के लिए खुल गए हैं।" इसमें प्रवेश पाकर लेटेन्ट-मोशन भी जो मुझसे बोला था वह मैं "वह सबको प्यार करता है" नामक पुस्तक में लिख चुकी हूँ।

प्रिय बन्धुओं! उनकी कृपा को मैं समझ नहीं पा रही हूँ कि कैसे उन्होंने असल-सत्य को भी आज इस लेखिनी द्वारा उतार कर समस्त के लिए सुलभ कर दिया है। इतना ही नहीं, उनकी शक्ति के सहज-कमाल को मैं तब आश्चर्य से देखती रह गई जब मैंने पाया कि मेरा स्वरूप यहाँ दिव्य-सौंदर्य (Divine beauty) में कुछ ऐसा बदलता जाता है कि साक्षात्कार के सौंदर्य में मुझे कोई अन्तर ही नहीं लगता है तभी यहाँ हमें कोई नयापन नहीं लगता है। लेकिन मेरे मानव-स्वरुप को दिव्य सौंदर्य में बदलने वाले स्वरूप का परिचय यदि पाना चाहेंगे तो खुद को ही भूल जायेंगे। अब "कौन हैं ये" की दिव्यानुभूति में लय हो जाने पर भी मैं कैसे कहूँ "कैसी है वह दिव्य-छवि।"

अब यह लेखिनी उठ रही है अपने सौभाग्य की चरम सीमा छू पाने के लिए। उनकी ही दिव्य-ज्योति के सहारे जो देख रही हूँ उसे ही अंकित कर पाने का मैं प्रयत्न कर रही हूं। वह यह है कि मेरे बाबूजी महाराज की तत्परता जो मुझे उन्नति की चरम-सीमा तक ले आई है। मुझे लगता है कि उनकी कृपा की इस तत्परता ने भूमा के मौन को भी मानों तोड़ दिया है। भूमा के और ज़ात के भेद को भला बिना उनके मौन को तोड़े कौन स्पष्ट कर पाता। यह आदि-सत्य तो समस्त के प्रति प्रत्यक्ष हो गया है कि स्वयं अंतिम-सत्य भी उनके समक्ष खुद को पर्दे में नहीं रख सका है।

श्री बाबूजी ने अपनी पुस्तक में और कथन में बराबर 'अल्टीमेट' और 'ज़ात' शब्दों का प्रयोग किया है। आज कदाचित इस दिव्य विभूति (श्री बाबूजी) के दिव्य गौरव की गरिमा को उजागर करने के लिए, स्वयं आदि शक्ति ने ही उनकी इस नूर चश्मी (कस्तूरी) को इन दो शब्दों के अभेद होते हुये भी, किंचित भेद को समझाने के लिए चित्र का भी सहारा दिया है। अपने बाबूजी की कृपा की गहनता में डूब कर ही मेरी लेखिनी इन दिव्य-हीरा-मोती जैसे शब्दों के अर्थ एवं दशाहीन-दशा के दैविक-सत्य को भी अनावृत्त करने का सुधन्य प्रयास कर रही है।

बहुधा लोगों का प्रश्न होता है कि आपकी जात क्या है? कदाचित् आज भूमा (अल्टीमेट) के मन में खुद की ज़ात को जानने की जिज्ञासा हो उठी है। वह भी इसलिए कि आज अपने प्रिय गोपाल, श्री बाबूजी के द्वारा पकड़ाई गई लेखिनी द्वारा वह अपनी ज़ात को प्रगट करना चाह रहा है। एक गहनता ने इस प्रश्न को और भी

दैविक-सौंदर्य से सजा दिया है कि पृथ्वी पर प्रगटे उनके लाल श्री बाबूजी की ज़ात के बारे में भी संसार जानना चाहेगा। एक ओर तो यह ध्रुव सत्य आफ़ताब की भाँति रौशन है कि जो जन्मा ही नहीं उसकी भला क्या ज़ात हो सकती है? किन्तु उत्तर जो समक्ष में है उसे लिखकर इस प्रश्न का समाधान सदैव के लिए हो जाएगा।

अब सुनिये उत्तर कि भूमा के अपने गिर्द (चारों ओर) का समां एवं उसका डिवाइन-एटीकेट ही उसकी अनुपम ज़ात है। श्री बाबूजी ने जब ज़ात शब्द का प्रयोग किया है तो इसका भी अपना कोई गौरव होगा अवश्य। संसार के प्राणियों की तो जात होती है किन्तु ज़ात जो बाबूजी के अभ्यासी 'पहुँच' का भी अन्तिम सत्य है और भूमा के केन्द्र का भी। वह अपनी हालत बताता है कि जो हमेशा एक सा रहता है अर्थात् यहाँ चेंजलेस कन्डीशन ही उसकी ज़ात है। यद्यपि भूमा एवं ज़ात दोनों का अर्थ एक सा लगता है फिर भी कुछ अन्तर लिए हुये हैं। मुझे याद है कि जब श्री बाबू जी ने मुझे यह महत्-कृपा प्रदान की थी तब लिखा था "तुम्हें यह चेन्जलेस-दशा मुबारक हो।" इस पुस्तक में अंकित ज़ात और भूमा की परिभाषा अनुपम है क्योंकि श्री बाबूजी द्वारा मेरे समक्ष उतारी हुई इस परिभाषा को भला कौन लेखिनी लिख पाने का साहस कर पायेगी। संसार में उत्पन्न हुये प्राणी की तो कोई न कोई जात होती ही है किन्तु डिवाइन के लिए श्री बाबूजी ने ज़ात शब्द के नीचे बिन्दु (.) का प्रयोग किया है। वह पृथ्वी पर उत्पन्न नहीं हुआ है इसलिए उसकी कोई जात नहीं है परन्तु ज़ात के नीचे बिन्दु (.) अर्थात् शून्य का प्रयोग अपनी प्रत्यक्षता स्वयं दे रहा है कि उसकी जात शून्य है। किन्तु उसके चारों ओर का समां जो उसके ही कारण है और उसके गिर्द (चारों ओर) है, लेकिन उसमें अर्थात् डिवाइन के आदि-केन्द्र में नहीं है, इसलिए उसके लिए ज़ात शब्द की ही श्रेष्ठता है।

- ईश्वर को प्राप्त करने की ज़रूरत सबको है यह मानना पड़ेगा, किन्तु चाह नहीं है। (श्री बाबूजी)
- "Restlessness is the way, and peace is the result. (श्री बाबूजी)
- अभ्यासी का लय-अवस्था पर आ जाना ईश्वरीय-बरक़त है। जितना ज़्यादा अपने आपको लय कर सकें, उतना ही ज्यादा मंजिल पर पहुँचा हुआ समझना चाहिये। (श्री बाबूजी)

दैविक- प्रशिक्षण

मैंने यह सत्य प्रत्यक्ष पाया है कि मुझे हर दैविक-कार्य को सिखाने के लिए श्री बाबूजी को कितना परिश्रम करना पड़ा है और कितने उपाय निकालने पड़े हैं, क्योंकि वे भलीभांति अपनी बिटिया को जानते हैं कि उसकी अपनी समझ तो कबकी लय हो चुकी है। यही कारण है कि श्रेष्ठ-गतियों के गहन रहस्य को बताने के लिए उन्हें आज दैविक-तूलिका भी उठानी पड़ी है ताकि नन्हें बालक की भांति चित्र देख कर मैं समझ सकूँ। वास्तविक बात तो यह है कि जो कुछ वे बताना चाहते हैं वही, और उतना ही, मैं लिख रही हूँ। एक बार श्री बाबूजी ने मुझसे कहा था कि "तुम में लय अवस्था जितनी होनी चाहिए वह पूरी मौजूद है। तुम अभ्यासी को फ्रीडम-फ्राम-री बर्थ (आवागमन से छुटकारा) की दशा तो जब चाहो दे सकती हो। इनीशियेशन अर्थात दीक्षित होना अभ्यासी के लिए उत्तम वरदान है, जिसे तुम प्रदान कर सकती हो क्योंकि मेरी दिव्यशक्ति को तुमने पहचान लिया है।" इतना ही नहीं कितनी ही बार उन्होंने अभ्यासी को प्रिसेप्टर बनाते समय एवं इनीशियेशन (दिव्य-दीक्षा) का महान योग देते समय मुझे अपने साथ ही बैठाला था। उस समय तो मैं अपना परम सौभाग्य समझकर बहुत खुश हो जाती थी परन्तु बीच-बीच में शायद मुझे कार्य की शिक्षा देने के लिए पूछते भी जाते थे कि "बिटिया, बताओ, हमारा काम ठीक हो रहा है। प्रिसेप्टर की सफ़ाई एवं शक्ति पूर्ण हो गई है आदि-आदि।" इन सबके बारे में तो मैं लिखकर बताऊँगी ही किन्तु! उस समय का उनका वह अनुपम प्यार एवं उनकी वह दिव्य-छवि, उसे लिख पाने में किस लेखिनी का साहस होगा जो यह बता सके कि "कौन हैं ये।" किस तूलिका की मजाल है जो उस दिव्य-छवि का साया भी हमारे समक्ष रख सके। सच तो यह है कि वास्तव में जो हमेशा-हमेशा है उसके बारे में भला क्या लिखा जा सकता है। उस पर भी जिस स्तर तक लोग पहुंचे उस दर्शन का वर्णन तो कर दिया है किन्तु सम्पूर्ण साक्षात्कार दिलाने वाला कोई अब तक आया ही नहीं अथवा यों कहें कि मानव को दर्शन के अतिरिक्त ईश्वर-प्राप्ति का लक्ष्य किसी ने दिया ही नहीं। कारण यही है कि भक्ति का लक्ष्य तो मात्र दर्शन है और आज युग धन्य हो उठा है कि श्री बाबूजी समस्त के हित भूमा अर्थात वतन की वापसी का अनुपम वरदान देने आये हैं। भूमा ने अपने इस गोपाल को, अपनी ही छवि एवं अपनी ही आदि-शक्ति के श्रोत पर आधिपत्य देकर भेजा है। इसीलिए तो आज यह लेखिनी उनकी ही अनन्त-शक्ति से गर्वित है कि उनकी बिटिया उनकी परम शक्ति का वरदान पाकर अपने अभ्यासी बान्धवों को इस लेखन का दिव्य वरदान

दे पाने की क्षमता पाकर निहाल हो गई है। आज उनकी अद्भुत कृपा ने ही मेरे अस्तित्व को विनय की सहज गति की तह में छुपा दिया है। उन्हें ऐसा क्यों करना पड़ा जानते हैं? क्योंकि अहं के सोलह-सर्किल्स घुल जाने पर तथा उनकी ही दिव्य शक्ति में लय हो जाने पर मेरे पास शेष ही क्या रहा जहाँ कुछ भी छिपाया जा सके।

दैविक-शिक्षा के विषय में नितान्त अनभिज्ञ भला मैं कैसे जान सकती कि सहज-मार्ग द्वारा आध्यात्मिक-क्षेत्र में प्रगति को जो प्रथम एवं छोटी सी देन है मालिक की, वह है फ़्रीडम-फ़्राम-रीबर्थ अथवा आवागमन से छुटकारा। एक दिन एक भक्तिमय अभ्यासी के सामने आते ही मुझे लगा कि मालिक इस पर आज कम से कम इतनी कृपा तो करेंगे ही कि यह आवागमन के बंधन से मुक्ति पा सके। बस फिर क्या था शिक्षा समक्ष में थी शरीर को भूले रहने की अवस्था को अभ्यासी में स्थिर रखने के लिए इससे योग पाये हुए भौतिक अहं के सूक्ष्म-आधार को मालिक की कृपा एवं अनफेलिंग इच्छा-शक्ति द्वारा पिघलाकर जब साफ़ कर दिया तो फिर मैं शरीर हूं या यह शरीर और रूप मेरा है, यह भौतिक लगाव ही साफ़ हो गया। तो अब आप ही बताइये कि फिर इस शरीर रूपी आवरण का जब आधार ही न रहा तो आवागमन से मुक्ति की अवस्था का प्रकाश ही सूक्ष्म शरीर में व्याप्त हो गया। पश्चात अब एक सबसे बड़ा लाभ आध्यात्मिकता में हमें अब यह मिलता है कि हमारे सतत्-स्मरण एवं लगन तथा ध्यान द्वारा अब सूक्ष्म शरीर की ठोसता पिघलना शुरू हो जाती है। अब सामीप्यता के सेंक से हमारा अन्तर्मन रोमान्चित रहने लगता है। क्या कहने हैं इन दशाओं के अनुभव के। हमेशा यही लगता था कि मानों अब तक अन्तर में सोया हुआ आनन्द अब जाग उठा है। अन्तर में दृष्टि जाते ही लगता था कि मानों अन्तर बेमतलब ही आनन्दित है। यद्यपि यह सत्य अपनी जगह है कि एक अवस्था तो प्रियतम के प्रेम में विभोर रहने के कारण स्वत: जागृत होती है और एक जिसे मालिक अपनी इच्छा-शक्ति द्वारा स्वत: जगाते हैं। इनमें अन्तर अवश्य होता है। प्रथम तो यह है कि प्रियतम के प्रेम में डूबे हुये स्वत: जागने वाली स्थिति ऐसी खिली हुई होती है जिसके प्रकाश एवं खुशी से हमारा सारा सिस्टम आनन्द से रोमान्चित हुआ रहता है। दूसरे में अभ्यासी के प्रति बराबर निगाह रखनी पड़ती है जब तक कि वह ऐसी जागृत न हो जाये कि उसे पुन: नींद की खुमारी न छू सके। अब आप ही बतायें कि इस दुधमुँही उनकी बालिका की लेखिनी भला कैसे बता पायेगी कि "ये कौन है" अथवा कैसी है यह अनूठी अनुपम दिव्य-छवि।

अभी लेखिनी को चुप ही कर रही थी कि लगा मानों यह कुछ और लिखना चाह रही है। लेखन क्या है जैसे कोई अवस्था स्वयं अपने बारे में शिक्षण के हेतु कुछ बोलना चाह रही थी। तो सुनिये, पहले तो विदेहावस्था की दशा बोल रही है और वह यह है कि विदेहावस्था कर्मेन्द्रियों के संयोग से परे या अछूती होती है। भौतिक जीवन मानों शारीरिक-इन्द्रियों के सहारे स्वत: चालित रहता है। एक सत्यता यह भी है कि मानों इसमें गुण, गुण में ही बर्तते हैं। हमें इसका पता तब मिलता है जबकि हमें क्षणिक ही सही, अपने होने के भाव का पता मिलता है। इसका दैविक शिक्षण जो बाबूजी ने दिया है उसे देखिये इच्छा शक्ति से बीज दग्ध करो यह तरीका था लेकिन करूँ कैसे, इतनी शिक्षण समक्ष् में था कि ''जिस वजह से अभ्यासी असलियत से अलग हुआ है उस वजह पर हल्की तवज्जह दो जिसमें इच्छा में गहराई न आने पावे क्योंकि अभी पूरा नष्ट होने का समय नहीं आया है''। बस फिर क्या था ऐसा करते ही मानों अभ्यासी में विदेहावस्था की दशा खिल उठी थी।

अब अवस्था है जीवन-मुक्त अवस्था। इसकी प्राप्ति होने पर रह रह कर वहम सा लगता है कि मैं जी रही हूँ या नहीं। कहां हूँ कैसी हूँ इसका होश अब भला कौन दिलाये जबकि हम अनुभूति में अब ज्ञानेन्द्रियों के संयोग से भी अछूते रहने लगते हैं। आत्मिक-दशा के आनन्द की अनुभूति हमें ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही प्राप्त होती है। इस दशा (जीवन-मुक्त-अवस्था) में ऐसा लगता है कि ज्ञानेन्द्रियाँ सुषुप्तावस्था को प्राप्त हो गई हैं। तवज्ज़ह देते समय अभ्यासी में इसी इच्छा-शक्ति को रखने से सफ़लता मिलती है।

अब वे मुझे शिक्षा देते हैं अव्यक्त-गति की। यह माया से परे और जीवन रहित होते हुये भी सतत् स्मरण जीवन से सजी होती है। अव्यक्त इसलिए होती है कि यह हमारे अभ्यास के फल से परे स्वयं ईश्वरीय-गति का मात्र छींटा है जो हमारे में उतरती है श्री बाबूजी की प्राणाहुति द्वारा।

हम प्राणाहुति-शक्ति के सहारे जब अभ्यासी में इस अवस्था को देखना चाहते हैं तो मालिक से प्रार्थना करके अपनी दशा में जितना भी डूब सकें उतना डूब कर विचार द्वारा उस स्तर की सफ़ाई करके जब उसमें उतारने का प्रयास करते हैं तो सफलता अवश्य मिलती है किन्तु किसी भी दशा को अभ्यासी में स्थिरता पाने के लिए, अभ्यासी को भी उस दशा में स्वयं को भिगोये रखने का ध्यान रखना होता है जब तक कि दशा स्थिर न हो जाये।

जीवन-मुक्त-दशा को अभ्यासी में उतारने के लिए श्री बाबूजी की शिक्षानुसार

उसके सूक्ष्म शरीर के बेस आधार अहं को इच्छा शक्ति द्वारा मालिक के ध्यान में पूर्णतया घुला देने अर्थात् डिज़ॉल्व करने का प्रयास हमें ज़रूर यह सौभाग्य प्रदान करता है कि मैं अभ्यासी पर मालिक की खुशियां वार सकूँ।

अब अव्यक्त गति के लिये आवश्यक है कि यदि किसी में प्रियतम में लय-अवस्था है तभी वह किसी अभ्यासी में इसे उतार पाने में समर्थ हो सकता है अन्यथा नहीं। मैं क्या लिखूँ और कैसे लिख सकूँगी कि मेरे बाबूजी का शिक्षण क्या है? किन्तु दिव्य-तेज से तेजोमय श्री बाबूजी की मौजूदगी का समक्ष में पाना ही अभ्यासी में हर आत्मिक-दशा को उतार पाने की क्षमता प्रदान कर देता है। यह सहज कथन कि ''अलख को लखावै'' अर्थात् जो देखा नहीं जा सकता है, मेरे बाबूजी ने जब यह गति मेरे में उतार कर मेरी ओर देखा था बस उनकी उसी दैविक-दृष्टि द्वारा जो मैंने देखा था वह गति अव्यक्त है। सब कुछ है लेकिन लगता है कुछ भी नहीं है। एहसास कहता है कोई है लेकिन लगता है कोई नहीं है। उनकी दैविक-दृष्टि कहती है कि समक्ष में देख लेकिन देखते हुये भी जो समक्ष में है उसे देखा नहीं जा सकता है बस इस अव्यक्त गति में स्वयं लय होकर जब मैंने अभ्यासी भाई को प्राणाहुति-शक्ति का प्रसारण दिया और इस पावन गति के योग्य बन सके ऐसी सफ़ाई करके इस सीमा तक विशुद्धता को भी उसके हृदय में प्रवेश दिया। तभी मैंने पाया कि क्रमशः अव्यक्त-गति अभ्यासी में खिल उठती है। बस अभ्यासी के लिए भी शर्त यही है कि अपने को ईश्वरीय धारा में डुबोये रखें। उनका अद्‌भुत प्रशिक्षण तो मुझे उस समय आश्चर्य चकित कर देता है जबकि वे आज भाँति-भाँति की सूक्ष्म-गतियों के अन्तर को मेरे समक्ष प्रत्यक्ष उतार रहे हैं। ध्यान रहे कि इन दशाओं में हमें स्थिरता तभी मिल पाती है जबकि हम पाई हुई गति में डूबे रहने के सतत् प्रयास में रहें।

सत्य तो यही है कि उनका अब यह दैविक-प्रशिक्षण मात्र सदैव उनकी चाहना में समाये रहने पर ही हमारे में उतरता है और यह भी ध्रुव सत्य है कि मेरे बाबूजी महाराज की चाहना, कि उनकी चीज़ समस्त के लिये है ही, मुझमें दूसरों में उतार पाने की शक्ति एवं सामर्थ्य प्रदान करती रहती है। अर्थात् यह उन्हीं की चाहना है जो आज मैं उनकी दैविक-शिक्षा द्वारा दूसरों में हर दैविक गति को उतार पाने में समर्थ हो सकी हूँ। वे अपनी अबोध बालिका को क्या क्या सिखायेंगे यह तो उनकी कृपा ही जानती है। यह भी अवश्य है कि जिस कार्य को मुझसे पूरा करवाने की इच्छा वे जिस अभ्यासी के लिए करते हैं वह पूरा अवश्य होता है। आज एक रहस्य मेरे समक्ष और उज्ज्वल हो गया है कि प्रशिक्षक बनते ही उनकी दी हुई शक्ति के हम स्वामी बन जाते हैं यह नितान्त गलत है। मुझे याद है कि प्रशिक्षक (प्रिसेप्टर)

बनने के तीन वर्ष बाद मैंने श्री बाबूजी को लिखा था कि आज मैं कह सकती हूँ कि प्रशिक्षक बनाते समय जो शक्ति आपने दी थी उस पर अब मेरा अधिकार हो गया है, क्योंकि अब मैं जैसा कार्य अभ्यासी पर करती हूँ उसका फल मुझे तुरन्त मिल जाता है। लेकिन इसके लिए मेरा अनुभव है कि भक्ति की चरम सीमा अर्थात् ईश्वर में पूर्ण तन्मयता होनी चाहिए। श्री बाबूजी में लय रहते हुए हम अभ्यासी के हित के लिए जो भी कार्य करते हैं वह ज्यों का त्यों उसमें उतरता है। उनके प्यार का सेंक, अभ्यासी के सूक्ष्म एवं कारण शरीर को भी गलाना शुरू कर देता है। इतना ही नहीं, लय अवस्था द्वारा आत्मा को भी स्वतंत्र करके, परमात्मा में लय हो पाने की शक्ति भी हममें उत्पन्न हो जाती है। यह पाठ भी मैं अब सीख पाई हूँ।

अब मुझे लगता है कि श्री बाबूजी प्रशिक्षक बनाते समय या अभ्यासी को दीक्षित (इनीशियेट) करते समय जो मुझे अपने पास ही बैठाल लेते थे, उसका कारण ही यह था कि इस बहाने वे मुझे इन पावन कार्यों को कर पाने की सामर्थ्य देते जाते थे और काम में क्या ज़रूरत है सफ़ाई एवं शक्ति का ऐसा अंदाज़ भी प्रदान करते जाते थे। उनका मेरे लिए यह कह कर बुलाना कि 'हमारे इन्स्पेक्टर साहब को बुलाओ'। मेरे पहुँचने पर ही वे कार्य प्रारम्भ करते थे। बस वही कृपा आज मेरे में कार्य-क्षमता एवं शक्ति के रूप में खिल उठी है।

मै क्या लिखूँगी और कैसे लिख पाऊँगी कि जो अब हर समय ही मेरे समक्ष विद्यमान है 'ये कौन है?' उनके होने की प्रतीति को यदा-कदा उनका पावन एवं प्रिय मुखारबिन्द ही मुझे देता है। अभी कुछ दिन ही बीते हैं कि मेरे बाबूजी ने मेरे कार्य की एक कमी को एक वर्ष बाद सुधारा है। एक वर्ष पहले एक अभ्यासी को इनीशिएट (दीक्षित) करने की बात बराबर मेरे अन्तर को कुरेदती रही। एक दिन जब वह अभ्यासी आया तो मुझे लगा कि मेरे बाबूजी की इच्छानुसार उनकी शक्ति ही अभ्यासी का इनीशियेशन करने के लिए मुझमें क्रियान्वित हो उठी है। मैं भी सजग होकर बैठ गई। मालिक की इच्छानुरूप मैंने अभ्यासी भाई को ईश्वरीय-सम्बन्ध से योग देने का प्रयास किया और मुझे लगा कि बहुत अच्छा काम हुआ है। थोड़ी देर में मुझे लगा सेन्ट्रल-रीजन में दिव्य योग के सम्बन्ध में दिव्य सौंदर्य का निखार जैसा चाहिए था, वैसा नहीं आया है जो मुझे अच्छा नहीं लग रहा था। बस प्रार्थना करनी शुरू की कि इस कमी को कैसे पूरा करूँ? तभी बाबूजी ने मानों मुझे सिखाया कि तुम उस अनन्त-शक्ति के वैभव के देश सेन्ट्रल-रीजन की शक्ति में अभ्यासी को डुबो कर नहीं ले गई थीं। अब यह प्रश्न मेरे सामने था, कि मैं इसे कर भी कैसे सकती थी क्योंकि भूमा की अनन्त-शक्ति पर जिनका स्वामित्व हो वे बाबूजी ही ऐसा कर

सकते हैं। अत: जब मैने इस अभ्यासी को श्री बाबूजी को ही समर्पित कर दिया तब मैंने देखा कि पलक मारते ही वह योग अपनी गरिमा में आ गया था। अपने बच्चों के प्रति उनके प्रेम की अनन्यता का भला मैं कैसे वर्णन करूँ। इस विषय में एक विलक्षण शिक्षा जो अब उन्होंने मुझे दी है उसे लिखने में यह लेखिनी अपना आपा खो बैठी है। वह तथ्य यह है कि अभ्यासी में लय-अवस्था न होने के कारण अहं के सोलह वृत्त पिघलकर ईश्वरीय-शक्ति में नहीं घुल पाते हैं इसलिये बिगड़ने का यह आधार अभ्यासी के हित में कभी ठीक नहीं होता है। अत: अभ्यासी को दीक्षित करते समय इच्छा शक्ति से, उसके अहं के वृत्तों को, दिव्य सम्बन्ध की योग-शक्ति के निकट लाता जावे तो ऐसा ज़रूर हो जाता है कि अहं का आधार एक दिन मिट जाता है और तभी दिव्य-सम्बन्ध अपने दैविक सौंदर्य में आ जाता है, समय कितना भी लग जाये। अब आप ही बताईये कि किस लेखिनी की मजाल है जो यह हवाला तक दे सके कि ''कौन हैं ये'' एवं कौन सा लेखन इस दिव्य-विभूति के गौरव को प्रगट कर पाने में समर्थ हो सकेगा। एक बात तो सत्य है कि श्री बाबूजी के कथनानुसार बिना तद्रूप हुये यह दिव्य सम्बन्ध पाने के योग्य अभ्यासी स्वत: नहीं हो पाता है और बिना मालिक में लय अवस्था पाये तद्रूप होने की दैविक-दशा प्राप्त नहीं होती है। श्री बाबूजी के कथनानुसार बिना दिल के दर्द अर्थात् मिलन की तड़प के पैदा हुये जो आध्यात्मिक-उन्नति के हित शरीर में प्राण के समान ही आवश्यक है, साधना का परमानन्द प्राप्त नहीं होता है। अब पाठकगण यह भी तो जानना ही चाहेंगे कि 'दिल का दर्द क्या है?' तो सुनिये, मैंने अभ्यास काल में यही पाया कि यह (दर्द) वह वास्तविकता है जो समझाई नहीं जा सकती है क्योंकि अनुभूति ही इसकी यथार्थता है। जब मेरे बाबूजी आध्यात्मिक विषय के लेखन की हर चीज़ को स्पष्ट कर देना चाहते हैं तो फिर यह लेखिनी भी मौन कैसे रह सकती है। मेरी अनुभूति जो उन्होंने अब मेरे समक्ष फैलाई है, बता रही है कि अन्तर्मन में जो दिव्य-साक्षात्कार के लक्ष्य को प्राप्त करने की फ़िक्र है, तड़प है, यही दिल का दर्द है। अंतर में उमड़ते प्रेम को एवं श्री बाबूजी की उतारी हुई हर दशा एवं तड़प को आत्मसात् करता जाये, यही दिल के दर्द की परिभाषा है। इतना ही नहीं दिल के दर्द की इन्टेन्सिटी (गहराई) को भी आत्मसात् करके फिर भी जब मन प्यासा का प्यासा ही रह जाये, वही प्यास श्री बाबूजी के कथनानुसार ब्लिस (bliss) की हालत है। भला बेचारी यह लेखिनी जो श्री बाबूजी का पावन स्पर्श पाकर निहाल हो रही है अचानक आज मुझसे ही कह बैठी है कि-

'कौन किससे पूछे, हस्ती कैसी है ये आई रे।'

प्रशिक्षण के श्रेष्ठ शिक्षण में यह भी बताना आवश्यक है कि इनीशियेशन या दीक्षित होने की परिभाषा सहज-मार्ग साधना में क्या है? तो सुनिये-

यूँ तो भारतवर्ष में गुरू द्वारा मंत्र देने को ही दीक्षा का नाम दिया जाता रहा है और इसकी महत्ता को ही श्रेष्ठ गति की परिभाषा एवं गुरू प्रसन्नता की संज्ञा दी जाती रही है। मैंने भी बालपन से संत-महात्माओं का सत्संग पाया और प्रवचन को सुनकर उनको अपने में गुनने का सतत् प्रयास तो किया किन्तु महात्माओं के कहने पर भी, गुरूमंत्र दीक्षा लेने की बात मेरे अन्तर में कभी नहीं पैठी। कदाचित् इसीलिए कि ईश्वर को, श्री रामचन्द्र मिशन के अन्तर्गत, सहज-मार्ग में हमारे श्री बाबूजी महाराज द्वारा दीक्षा की श्रेष्ठता को, मुझमें उतार कर दीक्षा की गुरूता को समझाना था। आज तो मेरे अन्तर में आपसे सहज-मार्ग की किसी भी श्रेष्ठता की गुरूता को छुपा पाने के लिए कोई स्थान ही नहीं है।

आखिर सहज-मार्ग में दीक्षा की (इनीशियेशन की) परम दशा क्या है, बताना भी तो आज आवश्यक हो गया है। सहज-मार्ग साधना के प्रारम्भ करने के शायद छ: महीने बाद एक दिन जब आदरणीय मास्टर ईश्वर सहाय जी ने कहा कि "न जाने क्यों श्री बाबूजी कई बार तुम्हारे लिए इनीशियेशन की इच्छा जाहिर कर चुके हैं अत: आज तुम्हें बुलाया है।" मैं नितान्त नासमझ सी बाबूजी के समक्ष जाकर ध्यान में बैठ गई। क्या कहूँ उनकी परम कृपा एवं अविरल प्यार की वर्षा को। मैंने पाया की दीक्षित करने में वे अभ्यासी को अपने विराट हृदय में समेटकर अपनी दिव्य इच्छा-शक्ति द्वारा प्राणाहुति का प्रवाह देकर प्रथम तो परमात्म-शक्ति में योग देकर फिर हिरण्यगर्भ से योग दे देते हैं, या यों कहिये कि सम्बन्ध स्थापित कर देते हैं। इतना ही नहीं, ईश्वरीय-देश की दैविक-झलक, अपनी ही दिव्य दृष्टि से दर्शाते हुये उस शक्ति में भी योग (सम्बन्ध) प्रदान करते हुये, सत्य पद पर प्रतिष्ठित कर देते हैं। पश्चात् अपनी दिव्य-इच्छा-शक्ति के द्वारा अपनी अनन्तता से भी सम्बन्धित कर लिया है। बस फिर क्या कहूँ। मैं कहाँ थी मुझे होश नहीं था। मेरी यह हालत छ: माह तक रही।

इनीसियेशन

श्री बाबूजी महाराज द्वारा दिव्य-दीक्षा अर्थात् इनीसियेशन का प्रसाद पाने के उपरान्त आध्यात्मिक-जीवन को सार्थक बना देने वाली एक गहन एवं विशेष-अवस्था मैंने यह पाई कि ऐसे तो हमारा फैलाव बराबर ईश्वरीय-विराट् में होता है क्योंकि अभ्यास का सम्बन्ध इससे ही सम्बन्धित रहता है। तभी तो अक्सर मैंने बाबूजी को यही दशा लिखी थी कि "दशा क्या है लगता है सूर्य, चन्द्र मैंने ही बनाये हैं।

धरती से लेकर आकाश तक मानों मेरा ही पसारा है। ईश्वरीय-चर्चा सुनने पर लगता है कि मानों मेरा ही नाम लिया जा रहा है किन्तु दिव्य-दीक्षा का अहोभाग्य प्राप्त हो जाने पर मैंने पाया कि हमारा फैलाव (expansion) मानों श्री बाबूजी की अनन्त-शक्ति में होता जाता है। हर पल मुझे लगता था कि मानों मेरा सम्बन्ध मेरे अनजाने ही अनन्त से हो गया है तभी से मैंने पाया कि मेरा फैलाव अब अनन्त में होने लगा है। किन्तु ऐसी दिव्यानुभूति पाने के लिये बाबूजी में लय-अवस्था ही मात्र शर्त है। प्रेम की इस अनोखी रीति में हम सदैव लय (डूबे) रहें तभी ऐसी अनुपम दिव्य-दीक्षा के दिव्यानन्द में हमें दिव्य-समझदारी (डिवाइन कॉन्सशनेंस) का सौभाग्य भी मिलता है। इस पर भी एक बात की गरिमा मैंने और पाई है, वह यह कि उनके मुख से निकला वाक्य कि "आज से तुम मिशन में दीक्षित-अभ्यासी हो गई हो" मानों इस दिव्य-सम्बन्ध में एक मोहर लगा देती है। आज भी मैं उनके इस दैविक-वाक्य को सुन रही हूँ-यह उनकी ही अति कृपा है। आज भी श्री बाबूजी के वाक्य की दिव्य-मौहर अभ्यासी को मिलती है।

श्री रामचन्द्र मिशन के अन्तर्गत सहज-मार्ग में श्री बाबूजी ने इसे दैविक-दीक्षा या सम्बन्ध (डिवाइन-इनीशियेशन) का उज्ज्वल एवं अलौकिक नाम दिया है। इसमें कोई मंत्र नहीं दिया जाता बल्कि श्री बाबूजी महाराज अपनी दैविक इच्छा-शक्ति द्वारा अभ्यासी को सर्वप्रथम तो अपने हृदय में लेकर, अपनी इच्छा-शक्ति द्वारा क्रमश: उसका सम्बन्ध (योग) आदि-शक्ति के केन्द्र से कर देते हैं। किन्तु इस अद्‌भुत दैविक-सम्बन्ध के लिए शर्त में वे चाहते हैं अभ्यासी की अनन्य-भक्ति एवं अन्तर्मुखी होकर सतत् ही ईश्वरीय-सामीप्यता का सेंक पाते रहना।

दिव्य-दीक्षा में उनके दैविक-प्रशिक्षण के अन्तर्गत एक दिन मैंने पाया कि ईश्वरीय देश में अभ्यासी ठहर नहीं पा रहा है। मैं फ़िक्र में हो गई और श्री बाबूजी से प्रार्थना की। तब मुझे पता लगा कि उसमें अहं का होश बाकी था और अहं का होश रहते हुये कोई ईश्वरीय-देश में ठहर नहीं सकता है। तब श्री बाबू जी ने मुझे सिखाया कि अभ्यासी के प्राण को ईश्वरीय-विराट्-गति में डुबो देने से उसका होश, डिवाइन में ही विलीन हो जायेगा और ऐसा करने से वह ठहराव समाप्त हो गया। मैंने देखा कि जब व्यक्तिगत (इन्डिविज्वल) प्राण महत्-प्राण (बिग-प्राण) में डूब गया तभी अभ्यासी सत्य पद पर प्रतिष्ठित हो पाया जो कि द्वार है सेन्ट्रल-रीजन में प्रवेश पाने का। यहां पार्षद की दशा फैली थी इसलिए यह ज़रूरी हो गया कि वहाँ की गति में अभ्यासी को डुबो दे। इसके पश्चात मैंने अभ्यासी के जी को, जो अहं के आधार से रहित था उसको श्री बाबू जी को समर्पित कर दिया। ताकि सेन्ट्रल-रीजन में भूमा

की शक्ति के मालिक श्री बाबू जी ही इसे अपने दैविक-संकल्प में प्रवेश देकर स्विमिंग दे सकें। जब एक दम मैंने अचम्भे से देखा कि अभ्यासी मेरी आँखों से ओझल हो गया तब मैं समझ गई कि अब अभ्यासी का दैविक-सम्बन्ध या इनीशियेशन पूर्णरीत्या सम्पन्न हो गया है। यही वास्तविक-दशा है हायर कनेक्शन यानी मिशन में इनीशियेशन अर्थात् दीक्षित हो जाने की। एक बात और लिखना ज़रूरी है कि उनकी यह दैविक-शिक्षा समक्ष में तब आई जबकि विल-पावर अर्थात् इच्छा-शक्ति द्वारा अभ्यासी को दीक्षित हुये तीन माह बीत गए थे, लेकिन मुझे बराबर लगता रहा कि श्री बाबूजी मुझे इसको पूर्णरीत्या सिखायेंगे अवश्य।

वैसे तो मेरे बाबूजी महाराज ने मुझे लिखा था कि "भक्ति में डूबा हुआ अभ्यासी जब फ़नाइयत (लय अवस्था) में सतत् रहने लगता है तबसे ही उसका अन्तर मानों अपने प्रिय से स्वत: ही दीक्षित (सम्बन्धित) होकर तेजोमय होने लगता है। तुम्हारे लिए तो मैं वाह्य-रीति भी नहीं करता किन्तु प्रकृति की खुशी को देखकर और मुझे धरा पर लाने वाले समर्थ सद्गुरू के मुखाराबिन्द की मृदु-मुस्कान के लालच ने ही मुझे स्वीकृति प्रदान की है तुम्हें दीक्षित करने के लिए। उनकी प्यार भरी यह इच्छा मैंने पूर्ण कर दी है।" मैंने तो कभी यह सोचा भी न था कि मेरे जैसी नासमझ की लेखिनी इस दैविक एवं श्रेष्ठ रहस्य को कभी आपके समक्ष प्रगट कर सकेगी क्योंकि श्री बाबूजी हमेशा कहते थे "बिटिया! इनीशियेशन (दैविक-सम्बन्ध) के बारे में किसी से ज़िक्र न करना क्योंकि इस अलौकिक-सम्बन्ध को निभा पाना कठिन होता है। जानती हो क्यों? क्योंकि इसके लिए शर्त है "डाई योर सेल्फ" अर्थात अहं को मारो।

किन्तु आज! उनकी मृदु-मुस्कान की झलक आखिर यह अनुपम दैविक-रहस्य भी पचा न सकी कदाचित आपकी जिह्वा को मौन कर देने के लिए कि "कौन हैं ये"। मैं जानती हूँ कि श्री बाबू जी महाराज द्वारा दिये गये इस दिव्य-सम्बन्ध की गरिमा को गौरवान्वित बनाये रखने का उपाय स्पष्ट है कि ईश्वरीय-सागर में डूबे रहने का प्रयास और अहं का मरण (ड्राउन् योर-सेल्फ एण्ड डाई योर-सेल्फ)। अब सहज मार्ग में यात्रा के विषय में भी तो कुछ सुनिये !

सहज-मार्ग साधना-पद्धति में, आध्यात्मिक क्षेत्र की यात्रा का भी विलक्षण महत्त्व है। अपने श्री बाबूजी महाराज का कथन मुझे भलीभाँति स्मरण है कि "बिटिया! मैंने तुम पर रिसर्च करने का फ़ैसला इसलिए किया है कि तुम्हारे अनुभव करने की शक्ति (कैपेसिटी) मेरी रिसर्च को सफल बनायेगी।" परन्तु सत्य तो यही है कि

उनकी इच्छा ने ही मानों अपनी वाणी के साथ ही मुझमें अनुभव कर पाने की क्षमता को भी पूर्णतय: उतार दिया था। इतना अवश्य है कि आध्यात्मिक क्षेत्र में यात्रा के लिए मालिक में लय अवस्था होना आवश्यक है। इस श्रेष्ठ दशा को वे मुझमें पहले ही उतार चुके थे क्योंकि उन्हें मुझ पर रिसर्च जो करनी थी। मुझे लय अवस्था प्रदान करके रिसर्च की सफलता का श्रेय मुझे ही प्रदान करना था। कैसा आश्चर्य था कि प्रथम तो उन्होंने पिण्ड-देश, ब्रह्मांड-देश एवं पारब्रम्ह-मंडल की यात्रा कराने के साथ ही वहाँ की शक्ति पर अधिकार दिया था। फिर उनमें ही लय रहते हुये मैं आध्यात्मिक-क्षेत्र में हर मुख्य बिन्दु (पाइंट) की दशा का अनुभव पत्रों में लिखकर उन्हें भेजती रही और वे हर दशा का उत्तर देते रहे हैं जो कि 'अनन्त यात्रा' पुस्तक के रूप में तीन भागों में छप चुके हैं। क्रमश: और भी भाग छपते रहेंगे।

मुझे यह भी याद है कि उन्होंने भक्ति की तन्मयता में डूबी हुई भक्ति की तीन श्रेष्ठ-अवस्थाओं के रस में मुझे इतना सराबोर रखा कि उसमें मेरी लय अवस्था (घुलना) का प्रारम्भ हो गया। श्री बाबूजी के कथनानुसार भक्ति की तीन श्रेष्ठ अवस्थायें हैं- प्रथम 'इब्द', दूसरी 'मोबिद' और तीसरी 'मोबिद-उल-इबाद'। अब मैं तो यह सत्य भी उजागर करूँगी ही कि उनके ध्यान में खुद को खो जाने की दशा पाकर ही, पहले मैंने यह सत्य प्रत्यक्ष पाया, कि आध्यात्मिक-क्षेत्र में ईश्वरीय-धारा का सागर उनका ही विराट्-हृदय है। फिर क्रमश: विदेह-गति अर्थात् शरीर के होने का भान ही भूलने लगा। श्री बाबू जी ने मुझे लिखा कि "मुझे खुशी है कि भूल की अवस्था तुममें फलने लगी है।" तभी एक दिन मैंने उन्हें लिखा कि बाबूजी मुझे लगता है कि धरती पर चलते हुये भी मेरे पैर धरती का स्पर्श ही नहीं पाते हैं। तब उन्होंने लिखा था कि "ईश्वरीय धारा के सागर में डूबे रहने से तुममें मैं के भाव की भूल की अवस्था पैदा हुई थी और अब? भूल की अवस्था की दशा में तुम्हारी रहनी ही हो गई है तभी तुम्हें भौतिक-तत्त्वों के स्पर्श की प्रतीति (फीलिंग) नहीं हो रही है। ईश्वर ने चाहा तो ध्यान में सतत् डूबे रहने की यह दशा मेरे लालाजी साहब की कृपा से ध्यान में एक हो जाने की अवस्था यानी लय-अवस्था भी प्रदान करेगी और यात्रा का स्वत: आरम्भ तभी होता। मैं चाहता भी यही हूँ कि तुम आध्यात्मिक क्षेत्र के हर बिन्दु (पाइंट) की दशा की यात्रा स्वत: ही पूरी करो।"

अब यह भी बताना नितान्त आवश्यक हो गया है कि यात्रा क्या है? यात्रा में हर पॉइंट की दशा की सैर का पूर्ण आनन्द भी मिलता है और हर पॉइंट की शक्ति का पाते जाना भी शामिल रहता है। अब मैं देख रही हूँ कि हर पॉइंट की सैर के साथ जब वहां की शक्ति भी मिल जाती है तो आगे आने वाले पॉइंट की दशा स्वयं

ही समक्ष में आकर अपने आने का हवाला देने लगती है। इतना ही नहीं उस पॉइंट की सूक्ष्म सहज-शक्ति मानों वर्त्तमान पॉइंट की दशा के साथ ही वहाँ की शक्ति को भी मुझमें घुलकर मिल जाने को मजबूर करती रहती है। इस तरह से हर वर्तमान पॉइंट की दशा अपनी शक्ति के साथ ही आने वाले नवीन पॉइंट की दशा में विलय हो जाती है। इस तरह से श्री बाबूजी महाराज ने अपनी इस बिटिया को पहले ए से लेकर जेड तक मुख्य बिन्दु गिनकर आध्यात्मिक क्षेत्र की यात्रा दी, फिर उसके आगे के भी मुख्य छब्बीस पॉइंट्स की यात्रा अर्थात् कुल बावन पॉइंट्स की यात्रा भी पूर्ण करवाई और पूर्ण शक्ति भी बख्श दी। भला बताइये,कौन, क्या कह पायेगा इस अलौकिक दिव्य-विभूति के बारे में। जब शब्द मौन हों और उनकी ही सजायी हुई यह अभ्यासी दिव्य-मानव के रूप में परिणत होकर अपने होने के भाव को पूर्णतय: भूली हुई बैठ जाती है तो फिर आप ही बतायें कि किस लेखिनी में साहस है जो शब्दों के मौन को तोड़ कर इस दिव्य-अभ्यासी (कस्तूरी) में इसके होने के भाव (अहं) को स्पन्दन देकर कह सके कि अब जाग जा आध्यात्मिक-क्षेत्र की यात्रा तो तुझे ईश्वर का साक्षात्कार देकर पूर्ण हो गई और ऐसी निहाल हो गई कि तुझे सत्य पद पर प्रतिष्ठित करके अपने बाबूजी महाराज में विलीन हो गई है। लय अवस्था ने तुझमें पूर्ण रूप से उतर कर, सहज-मार्ग साधना को सार्थक बना दिया है और उनमें ही विलीन भी हो गई है। और तू! अभी भी प्रतीक्षारत हुई पार्षद-गति में भी पूर्णतय: विलीन हुई, अपने बाबूजी के आगमन की प्रतीक्षा में पलक पाँवड़े बिछाये बेसुध हुई, सेन्ट्रल-रीजन के द्वार पर बैठी है। इस पार्षद की दशा का भी मेरे में लय हो जाने के बाद ही मैंने पाया था कि अचानक सेन्ट्रल-रीजन से उठाकर मुझे मेरे बाबूजी ने अपने इस दैविक-संकल्प, को कि प्राणिमात्र को आदि-शक्ति, अल्टीमेट तक ले जाना है। इसकी पूर्णता के लिए प्रथम तो अस्तित्व-विहीन अस्तित्व अर्थात् आइडेन्टिटी-विधआउट- आइडेन्टिटी की दैविक-दशा से मुझे सजाया, पुन: मानो अपने दिव्य-संकल्प की नाव में लेकर सेन्ट्रल-रीजन अर्थात भूमा के वैभव के अनन्त-क्षेत्र में स्विमिंग प्रदान कर दी। बस तभी मैंने पाया कि दुई की गम्य न होने के कारण सेन्ट्रल-रीजन में मात्र पैराव होता है। यात्रा का अन्त तो सत्य-पद पर प्रतिष्ठित होने से पहले ईश्वरीय-शक्ति में ही विलीन हो गया था। जानते हैं क्यों? क्योंकि यात्री अपने वास्तविक स्थान सत्य-पद पर प्रतिष्ठित हो गया था और अब स्विमिंग की बारी थी जो श्री बाबूजी की कृपा से ही अभ्यासी को उनके संकल्प में प्रवेश देती है (आज यह कार्य भी)मेरे लिये सरल हो गया है।

एक मुख्य पॉइन्ट यहाँ पर यह भी लिखना नितान्त आवश्यक है कि यात्रा सदैव आगे ही चलती है कभी पीछे का मुख नहीं देख सकती। क्योंकि जिस सूक्ष्म गति की यात्रा को पूर्ण करके यह आगे जा रही है तो आगे के पॉइन्ट की यात्रा की दशा, पार की हुई दशा से कहीं सूक्ष्म होती जाती है। हर दशा में श्री बाबूजी ऐसी सहजता ला देते हैं कि पार की हुई पॉइन्ट की दशा की सूक्ष्मता की याद भी फिर हमें सहन नहीं हो पाती है। श्री बाबूजी की सहज-गरिमा भी तो देखिये कि हर पॉइन्ट की दशा सहज अवस्था में लय हो जाने के बाद उससे सूक्ष्म-अवस्था ही आयेगी। पीछे देखकर वह असहजता को सहन ही नहीं कर सकती है। आध्यात्मिक क्षेत्र की यात्रा का यह अपना एक अनोखा ही रहस्य है कि यह (यात्रा) हर दिव्य-स्थान की एक ही बार होती है। सूक्ष्मता पाकर पीछे की असहजता एवं भारीपन को सहन कर पाना असंभव होता है और हर पॉइन्ट लय हो जाने पर, उन्हें पुनः याद भी नहीं किया जा सकता है। यही असंभव है जो बाबूजी की कृपा से, आज संभव हो सका है।

यात्रा

वैसे तो हम सहज-मार्ग के अभ्यासीगण साक्षात्कार पाने के लिये यात्री की पंक्ति में खड़े हुये हैं जिन्हें श्री बाबूजी द्वारा पाई हुई ईश्वरीय-धारा का प्रवाह हमें आगे ले चलने को तैयार करता है एवं समस्त के लिये नेह-निमंत्रण है अनन्त की यात्रा के लिये। श्री बाबूजी महाराज अपनी दैविक-इच्छा-शक्ति द्वारा अभ्यासी को किसी भी श्रेष्ठ-गति में पहुँचा सकते हैं किन्तु यात्रा का सौभाग्य पाने के लिये हमें उनकी शर्त को पूर्ण करना होता है। शर्त भी कितनी प्यारी है कि "डाइव डीप इन डिवाइन ओशन एण्ड नैवर कम-आउट" अर्थात् ऐसा डिवोशन (लय-अवस्था) ही मात्र उनकी शर्त है जिसे हर अभ्यासी को पूर्ण करने के लिये भक्ति-रस में तन्मय रहना चाहिये। वास्तव में अनन्त की यात्रा का यही सार है जो उस 'दिव्य-छवि' पर बलिहार है।

उप श्रृंगार

वास्तव में इस पुस्तक के लेखन में मेरे बाबूजी की परम-शक्ति के कमाल का भी कमाल तब हो जाता है जबकि उपसंहार अर्थात् अहं के सोलह सर्किल्स का भी श्रेष्ठ संहार हो जाता है। उनकी दिव्य इच्छा-शक्ति प्रथम तो मानव के अहं को सोलह सर्किल्स में क़ैद कर देती है फिर उनकी कार्य-क्षमता का कमाल तब होता है जब वे अपने प्यार के सागर में डुबो कर अहं को गलाकर हमें हमेशा के लिए आज़ाद कर देते हैं। अहं से आज़ाद हुआ हमारा अंतर्मन, ईश्वरीय-छवि से पुलक उठता है।

यह पुस्तक अहं से उन्मुक्ति हो जाने के अद्‌भुत वर्णन के साथ मानव-उत्पत्ति के रहस्यका भी उद्‌घाटन करके इसे सत्य पद पर प्रतिष्ठित कर देती है। इतना ही नहीं, श्री बाबूजी महाराज के कथनों को स्पष्ट कर पाने में उनकी ही कृपा की अद्‌भुत-क्षमता अनुपमेय है। इस पुस्तक में अंकित ज़ात और भूमा का वर्णन तो आप सभी पढ़ेंगे किन्तु हमेशा से दोनों एक जैसे लगने वाले शब्दों की परिभाषा, एवं वहां के वातावरण की प्रतीति में अन्तर है, यह उनके बताये बिना भला कौन समझ पाता।

श्री बाबूजी महाराज की कृपा से वर्णित भूमा के सात वृत्त (रिंग्स्) तो स्वयं दैविक-स्पन्दन हीन होते हुए भी आदि-शक्ति के स्वामित्व से ओत-प्रोत श्री बाबूजी की दिव्य-बांहों के नीचे अपने को स्पष्ट करके मानों उनकी गुलामी में नत हो गये हैं। इसका भी प्रमाण तो आप जानना ही चाहेंगे तो सुनिये। वे अपनी फ़ोर्स-लेस-फ़ोर्स से मुझे इन सात रिंग्स में ले गये, और यहां के दिव्य-समां में समाहित कर दिया,एवं लेखन हेतु आज इसका नज़ारा भी समक्ष में उतारा है। यह मात्र उनकी ही दैविक-शिक्षा की खोज एवं उनकी ही सामर्थ्य है जिसके द्वारा उन्होंने अभ्यासियों को अल्टीमेट अर्थात अन्तिम-सत्य तक पहुँचाने का बीड़ा उठाया है।

आज उनकी यह बिटिया इस अनुपम दिव्य-विभूति की दिव्य छवि की,जो अंतर्ध्यान रहते हुये भी युग के ध्यान में समाई हुई है, प्रत्यक्षता के वर्णन के हित कैसे उठ सकी यह तो वे ही जानते हैं। यह दिव्य-छवि आज भी समक्ष में अपनी मधुर-मुस्कान द्वारा अभ्यासियों में ही नहीं बल्कि युग के प्राणों में अपने प्रेम का प्राण फूँक कर संदेश दे रही है कि अब तेरे मुस्कुराने के दिन भी आ गये हैं। इतना ही नहीं इनके दिव्य-चरणार्विन्द ने धरा के रजकणों को भी दिव्य-प्रकाश से प्रकाशित कर,युग की आत्मा को झकझोर दिया है। इसका प्रमाण तो मैंने तब पाया जब उनमें तद्‌रूप हो जाने पर मुझे लगा कि मेरा जीवन-रहित-जीवन भी इस दैविक छवि में लय होकर

अपने अस्तित्व के आधार को भी विलय कर बैठा था। कदाचित् इसीलिए उन्होंने मुझे दिव्य-चेतना (डिवाइन कान्शस्नेस) का वरदान देकर ही इस पुस्तक का लेखन आरंभ करवाया था। इतना ही नहीं सुपर कान्शस्नेस एवं डिवाइन कान्शस्नेस के अन्तर का ब्यौरा लिखाना भी वे नहीं भूले हैं। अंतिम सत्य का दैविक-अभ्युदय यह कह रहा है कि आज जो दैविक-शिक्षा वे मुझे अभ्यासी भाई-बहिनों को सहज-मार्ग साधना द्वारा श्रेष्ठतम-अवस्था में ले जाने के लिए दे रहे हैं उसका तो कोई सानी ही नहीं है। अभ्यास काल में तो उन्होंने अपनी बिटिया के लिए यह कह दिया कि "मुझे खुशी है कि आध्यात्मिकता के क्षेत्र में मेरी दिव्य-गतियों की पुनरावृत्ति तुममें हो रही है।" इतना बड़ा मान भी अपने ही सिखाये बच्चे के लिए जो उन्होंने संजोया है वह बेमिसाल है। आज सांकेतिक चित्रों द्वारा अपनी हर दैविक तथ्यों को मुझे समझाने के अतिरिक्त, अभ्यासी भाइयों को दैविक-दीक्षा के साथ श्रेष्ठतम-गतियों को भी उनमें उतार पाने की क्षमता के साथ उपाय भी बताते जाना, कदाचित् उन्हें इस लेखिनी को धन्य बनाना ही है।

तो लीजिये इस पुस्तक का श्रृंगार अब अपनी सीमा के अनन्त चरण को चूम रहा है। मुझे लगता है कि उनकी दिव्य-छवि को अभ्यासी की नज़र न लग जाये इसलिए अपने पास तक पहुंचने तक अहं के सोलह सर्किल्स अर्थात् हमारे अपने होने के भाव के आधार को भी वे स्वयं में ही लय कर लेते हैं। इतना ही नहीं, इसी बीच जिस सूक्ष्म-शरीर में आवागमन का कारण (संस्कारों की छाप) रहता है, क्रमश: उनकी नजरों के पावन स्नेह के सेंक से वह भी पिघलकर लय हो जाता है। अन्तत: कारण-शरीर को भी उनके सान्निध्य की पावन-तपिश का सेंक ऐसा लगता है कि वह भी अपने अस्तित्व को खो बैठता है अपने प्रिय में। वतन में पहुंचे बिना भला कौन समझ पायेगा इन दैविक-रहस्यों को जिन्हें वे स्वयं ही समस्त के हित समक्ष में फैला रहे हैं। आज जब लेखिनी भी पनाह मांग गई है तो फिर लेखन क्यों कर यह सत्य उजागर कर पायेगा कि कैसी है इस दिव्य-विभूति की दिव्य-छवि जो अपनी इस बिटिया के साथ आँख मिचौनी के खेल के सदृश समक्ष में प्रत्यक्ष है।

उनके ही बल पर और अनन्त प्यार पर न्यौछावर होकर मेरी अनन्त-यात्रा एवं दैविक आन्तरिक दृढ़ता, आज कुल वातावरण से पुकार कर कह रही है कि इसका पठन आपको भी उनके दैविक-स्नेहांचल में डुबो देगा। पुस्तक में जो लिखा है इसे आप याद नहीं रख पायेंगे लेकिन यह भी ध्रुव सत्य है कि इसका पठन आपको जिस श्रेष्ठ-दशा में डुबोयेगा अथवा लय करेगा उससे उबरने का आपका मन नहीं

होगा। मेरी यह प्रार्थना है कि आप उस परमानन्द से उबरने का प्रयत्न ही न करें, जिससे उनकी कृपा आप में दिव्य-सौंदर्य का निखार लाए और तब? आध्यात्मिक-दिव्य-दशाओं के अमूल्य मोती चुगकर, आप दूसरों को भी लाभान्वित करें। यह लेखिनी तो धन्य हो गई है अपने बाबूजी महाराज के वरदहस्त-कमल का पावन स्पर्श पाकर और इसका लेखन (विषय वस्तु) है उनकी इच्छा मात्र, जिसके कारण ही यह आदि-शक्ति के आदि-श्रोत का स्पर्श पाकर अपनी कस्तूरी की आतुरता भरी प्रार्थना बनकर धरा के कण-कण को अपने बाबूजी के गुणागान से मुखरित करता रहेगा। इतना ही नहीं एक दिन धरा की माँग को आध्यात्मिकता की दैविक-गतियों के अनुपम मोतियों से सजा देगी और तभी मेरी इस पुस्तक का उपसंहार अर्थात् अहं के सोलह वृत्तों का संहार मेरी लेखिनी के उपश्रृंगार को सुधन्य बना देगा।

।। हमारा त्यौहार ।।

श्री बाबूजी महाराज का पावन जन्मोत्सव 30.4.97

1. आज भर आई हैं आँखियाँ याद में त्यौहार की,
बज उठी शहनाईयाँ दिल में हैं तेरे प्यार की ।।

2. आ रही हैं झलकियाँ रह रह के तेरी याद बन,
होश कहता कैसे खोयें ये मधुर क्षण आज मन,
लागे है ऐसा मधुर छवि सामने है आपकी ॥

3. है थिरकती प्रकृति खुद को भूल खुशियों में मगन,
धरा चरणों में चढ़ाये हैं तेरे श्रद्धा-सुमन,
भूमा ने वैभव लुटाया जन्मदिन में आपकी ॥

4. नूर की रंगत जभी पहिचान मेरी बन गई,
दर्द की मासूम आँखें दर्श तेरा पा गई,
झूम उट्ठा था समां आँचल में खोये आपकी ॥

5. पी गये दृग-सिन्धु कैसा भोर ये तेरे जन्मदिन का,
छवि तुम्हारी सामने चिल्मन सजा तेरे फैज़ का,
लेखिनी भी कह न पाये बात अनहद पार की ॥

6. पा गये अपना वतन अब शक्ति तू ही है हमारी,
भा गई तक़दीर तेरी नज़र को अब है हमारी,
ज़िन्दगी भी जी रही है मौज बनकर आपकी ॥

7. जी लगी पूंछे है हमसे भूल मत जाना हमें,
याद की अँखियाँ छलक कहतीं भुलाना मत हमें,
हम खड़े एकटक हैं जैसे शम्मा तेरे प्यार की ॥

8- दिव्य अनुपम थी घरी जब केन्द्र ने खोला था द्वार,
पुरूष भी विस्मित हुआ था देख लाला का वो प्यार,
रूख से जब पर्दा हटाया आदि-छवि ने आपकी ॥

9- आपकी मुस्कान से उत्सव सरसता ये रहे,
युग तेरी यादें सँजोये पुष्प बरसाता रहे,
प्रार्थना संध्या रहें नज़रों में बस हम आपकी ॥

प्रश्न और कस्तूरी बहिन द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्नः- डिवोशन क्या है?

उत्तरः- दिव्यता के सागर में खुद (अपने होने के भाव) को गहराई से डूबोये रहें और फिर कभी बाहर न आयें हम अभ्यासी के लिये डिवोशन की यही परिभाषा है।

प्रश्नः- भक्ति क्या है?

उत्तरः- जो अपने करने के भाव से तो दूर 'लक्ष्य' के प्रति दिवानी हो बस भक्ति की यही परिभाषा मैंने पाई है।

प्रश्नः- लय- अवस्था क्या है ?

उत्तरः- ईश्वरीय-सागर (श्री बाबूजी के हृदय) में डूब जाने पर तलहटी तक पहुँचते पहुँचते जिन दैविक-हालतों से हम गुजरते हैं वही लय-अवस्था की अवस्थायें हैं एवं उसकी परिभाषा है।

प्रश्नः- प्रार्थना क्या है ?

उत्तरः- ख़ुदी की ऑफरिंग का भाव ही प्रार्थना है जो आध्यात्मिकता के लिये आवश्यक हृदय में विनय को जन्म देती है।

प्रश्नः- सफ़ाई का क्या अर्थ है ?

उत्तरः- हृदय कि वह पुकार कि 'जो भी बातें 'तुम्हें' पाने में बाधक हैं या कभी भी हो सकती हैं वह सब साफ़ हो जायें'। सफ़ाई का साँचा अर्थ यही है।

प्रश्नः- ध्यान कब तक करना चाहिये ?

उत्तरः- जब तक कि 'जिसकी प्राप्ति' के लिये ध्यान का अभ्यास हमने शुरू किया है मिल न पाये तब तक हमें 'उनका' ध्यान रखना ही चाहिये।

प्रश्नः- सतत् स्मरण कैसे रखें ?

उत्तरः- स्मरण को विचार से कभी न तोड़ें। मान लीजिये कि बार बार हम ध्यान रखना भूल जाते हैं तो चाहे कितनी ही देर बाद याद क्यों न आये इस विचार को ही दृढ़ करें कि मेरा ख्याल तो मेरे बाबूजी के साथ ही था, 'उनके' ही स्मरण में भींगा था लेकिन इस विचार में हृदय का साथ लिये रहें तो एक दिन अवश्य ही स्मरण सतत् हो जायेगा।

प्रश्नः- अभ्यास क्या है ?

उत्तरः- दिल की सतत् पुकार है 'प्रिय' से मिलने की।

संत कस्तूरी द्वारा लिखित पुस्तकें

1. दिव्य देश का दर्शन-सहज-मार्ग के दर्पण में - सन् 1978
2. साक्षात्कार से अन्तिम सत्य तक सन् 1988
3. कौन थे वे - प्रथम संस्करण, मार्च 1992
   द्वितीय संस्करण, फरवरी 1996
4. वह सबको प्यार करता है - सन् 1994
5. संध्या के गीत व्याख्या सहित - सन् 1995
6. अनंत यात्रा - भाग 1 - जुलाई 1992
7. अनंत यात्रा - भाग 2 - जुलाई 1994
8. अनंत यात्रा - भाग 3 - सितम्बर 1996
9. वह दिव्य छवि - जुलाई 1997

अनुवादित पुस्तकें English Translation

1. Who was He - February 1995
2. Anant Yatra Part - 1 - July 1992
3. Anant Yatra Part - 2 - February 1997
4. Realization to Ultimate Reality - Oct 1996